॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

वर्ष ४

भक्ति

संख्या ९

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति।)

ज्येष्ठ सम्वत् १९८७

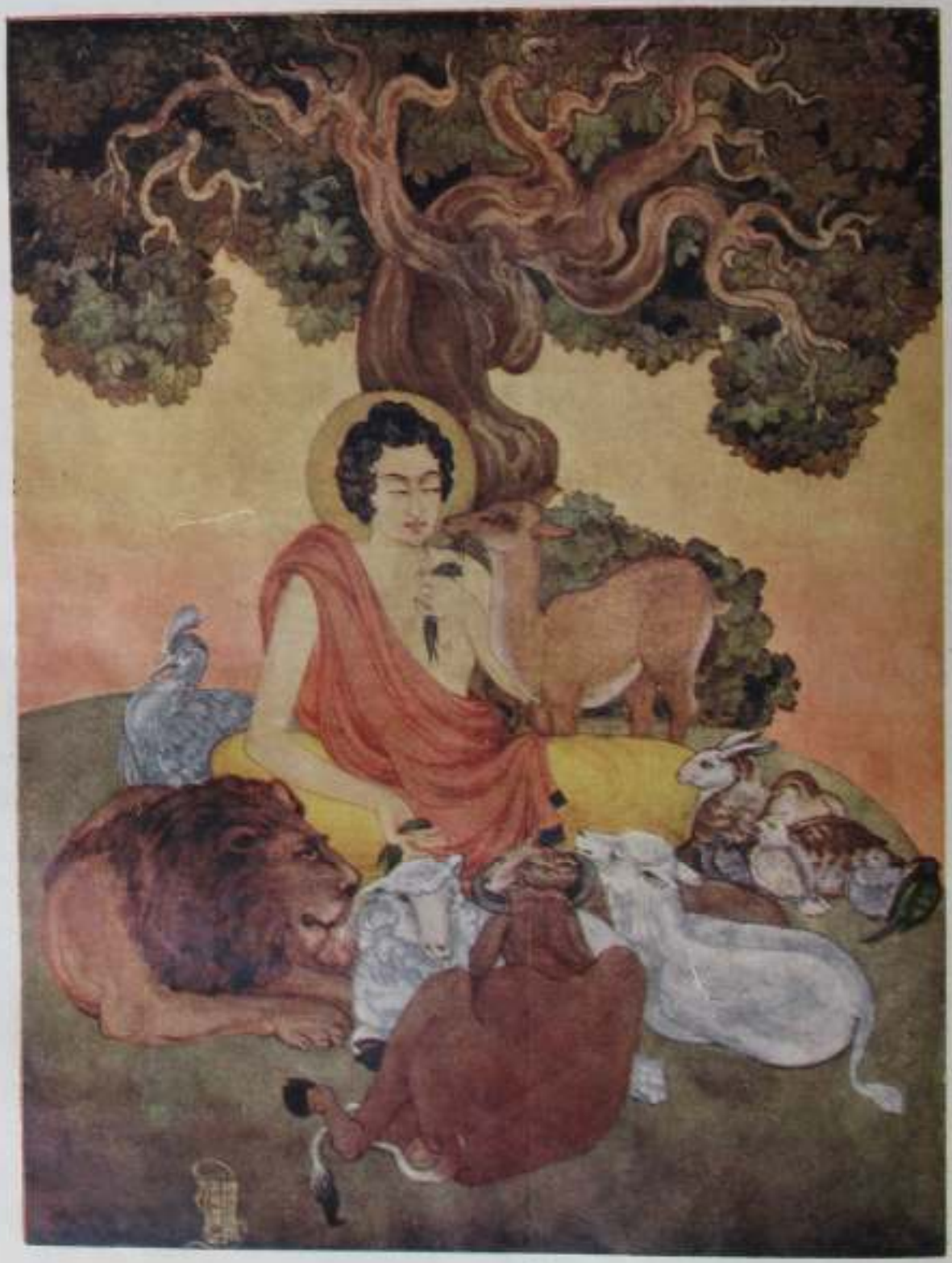

"भगवान बुद्ध का प्रेम भाव"

THE MAHARATHI PRESS, DELHI

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ४ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, वैशाख पूर्णिमा सं० १९८७ | अङ्क ८

वेदोपदेश

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणि रूपमाश्विनौव्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण ॥ १ ॥

हे परमात्मन ! श्री और लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी स्वरूप, रात्री दिवस पार्श्वस्वरूप, नक्षत्र आपका रूप, दोनों आकाश मुख स्थानीय हैं, कर्म फल की इच्छा करते हुये इच्छा करो । मेरे निमित्त उस लोक की इच्छा करो कि मैं सर्व लोक की इच्छा करूं (सर्वात्मक हो जाऊं) ॥ १ ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तउचन्द्रमाः । तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म ताऽआपः
सप्रजापतिः ॥ २ ॥

वह भगवान् ही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुद्ध ईश है, वही जल है, वही प्रजापति है ॥ २ ॥

सर्वेनिमेषाजज्ञिरेविद्युतः पुरुषादधि। नैनमूर्द्ध्वन्नतिर्य्यञ्चन्नमध्ये परिजग्रभत् ॥ ३

इस प्रकाश स्वरूप पुरुष से सब निमेष पैदा हुये, इस पुरुष को न तो ऊपर से न चारों ओर से न मध्य से कोई ग्रहण कर सकता है ॥ ३ ॥

न तस्यप्रतिमाअस्ति यस्यनाममहद्यशः। हिरण्यगर्भइत्येष मामाहिंसीदि-
त्येषायस्मान्नजातऽइत्येषः ॥ ४ ॥

इस पुरुष की जिस का नाम महद्यश है, कोईप्रतिमा (उपमा) नहीं है, वही हिरण्यगर्भ है, यह मन्त्र और "वह हम को न मारे" यह मन्त्र और 'जिस से उत्कृष्ट कोई नहीं है' यह मन्त्र यह जिस के प्रतीक हैं ॥ ४ ॥

एषोह देवः प्रदिशोनुसर्वाः पूर्वोह्जातः सउगर्भेअन्तः। सएवजातः सज-
निष्यमाणः प्रत्यङ्जना स्तिष्ठति सर्वतो मुखः ॥ ५ ॥

यह ही प्रकाश स्वरूप भगवान् सब दिशाओं को व्याप्त करके स्थित है, हे मनुष्यो ! यही सबसे पहिले प्रकट हुआ, गर्भ के मध्य में भी वही स्थित है होने वाला भी वही है हर एक पदार्थ में गमन करने वाला और सर्वतोमुख वही है ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य भोला बाबा जी]

हे मंसाराम ? अब वेद निष्ठा के भक्तों की कथायें सुनाता हूं, मन लगा कर सुन:-

कथा रसखान की।

"यथा नाम तथा गुणाः" रसखान भक्त सच-मुच रस की खान ही थे। यह परम भगवद्भक्त हो चुके हैं। पहिले यह मुसलमान थे। एकबार अपने पीर (गुरु) के साथ चलते२ श्रीवृन्दावन में आये। वृन्दावन-में आने से उनके अनेक जन्मों के किये हुये पुण्य कर्म उदय हो आये अर्थात् उन को श्रीव्रजचन्द आनंद कंद के दर्शन हो गये। दर्शन होते ही उन की दशा और ही होगई ! अचानक कायापलट हो गये ! श्रीकृष्ण के रूप अनूप में छक कर बेसुध होकर गिर पड़े ! उनका पीर इस पीर को न समझा ! मूर्च्छा समझ कर औषधि करने लगा और चिल्ला २ कर पुकारने लगा ! बड़ी देर में रसखान ने आंखें खोलीं ! उसी क्षण विद्या और काव्य सब गुणों के खानि हो गये ! मन मोहन की मनोहर मूर्ति की छवि का एक कवित्त वर्णन किया और अंत में कहने लगे। 'पीर जी ! आंखें क्या खोलूं मक्खन चोर ने मनको चुरा लिया है। उनकी अद्भुत मूर्ति मेरे मन में बस गई है'! पीरने काबे चलने को कहा तो कहने लगे 'अजी पीर जी ! काबा यहीं है, मैं तो व्रज का हो

चुका, अब कहां जाता हूं ? अब तो यहां से कहीं जाने वाला नहीं हूं, अब तो यह ही इच्छा है कि पत्थर होऊं तो गिरिराज का होऊं पशु हूऊं तो नंदराय की धेनु हूऊं, मनुष्य का शरीर मिले तो व्रज का ग्वाल बाल होऊं, पक्षी होऊं तो व्रज का मोर होऊं, वृक्ष होऊं तो वृन्दावन का'। पीर ने चाहा कि बल से रथ में डाल कर ले जावे, रसखान वृन्दावन के वन में जा छुपे, पीर ढूंढ २ कर थक गया, कहीं पता न मिला हार कर चला गया, रसखान ने वृन्दावन में वास करके हजारों कवित्त वृन्दावन की शोभा के वर्णन किये और प्रिया प्रियतम की शोभा विहार की अद्भुत रचना की। वैष्णव वेष में रहते थे, बहुतसी मालायें पहिने रहते थे। किसी ने पूछा कि एक दो माला बहुत हैं, इतनी मालायें क्यों लटका रक्खी हैं ? उत्तर दिया 'माला संसार समुद्र से पार उतार देती है, छोटे पत्थरों को एक दो मालायें बहुत हैं, मैं तो बड़े भारी पत्थर के सदृश हूं, मुझे बहुतसी मालायें रखनी चाहियें'।

कुण्डली

मथुराजी रसखानजी, आये गुरु के संग।
मन मोहन छवि देखि कर, रंगे कृष्ण के रंग॥
रंगे कृष्ण के रंग, संग गुरु का तज दीन्हा।
काबे की तजि आश, वास वृन्दावन कीन्हा॥
पहिनें तुलसी माल, न्हाय व्रज में जमुनाजी।
भोला ! तजि तिहुं लोक, कृष्ण भज बस मथुराजी॥

कथा भगवान्दास की।

भगवान दासजी मथुरा के रहने वाले भगवद्भजन भाव में दृढ, बड़े गुणवान भगवत् के प्रेमी भोता, रहस्य रस के ज्ञाता भगवद्भक्तों में विश्वास वाले थे। ऐसे सुन्दर रूप वाले थे कि उनको देखकर मनको सुख होता था। भगवत् के धामों की टहल करने वाले और सभी भावों में श्लाघ्य थे। एकबार बादशाह ने परीक्षा के हेतु ढोंढी पिटवाई कि जो कोई माला तिलक धारण करेगा, वह मारा जायगा। इस बात पर बहुतों ने माला पहिनना और तिलक लगाना छोड़ दिया। भगवान्दासजी न डरे और अपने अनुगामियों सहित पहिले से भी अधिक प्रकाशित तिलक लगा कर और दोहरी मालायें धारण करके निःशंक बादशाह के सामने चले गये। बादशाह ने आज्ञा न मानने का कारण पूछा तो बेधड़क होकर कहने लगे।

भगवान्दास-हमारे दीन में माला तिलक सहित प्राण जाय तो उद्धार हो जाता है। हमको इस समय अपनी मृत्यु का ज्ञान हो गया है, इसलिये तिलक माला अच्छे प्रकार से धारण करके आपके पास आये हैं, कि बिना श्रम ही उद्धार हो जाय।

भगवान्दास का यह दृढ विश्वास देख कर बादशाह अति प्रसन्न हुआ और जो इच्छा हो, मांगने को कहा। भगवान्दासजी बोले कि मथुराजी से बाहर जाना नहीं चाहता। बादशाह ने लिख दिया कि जब तक मन चाहे मथुरा की आमिली करो। भगवान्दास जी ने बहुत दिनों तक मथुरा जी की आमिली की। गोवर्द्धन जी में हरदेव जी का मन्दिर और मानसी गंगा पाखरा इनका ही बनवाया हुआ है। सच है दृढ निश्चय वाले की ही जय होती है।

कुण्डली

मथुरावासी भक्तवर, भगवानदास सुजान।
प्यारा भगवत् वेष जस, तस प्यारे नहिं प्राण॥

तस प्यारे नहिं प्राण, तिलक करि माला धारी।
गये शाह दरबार, शाह की शंका टारी॥
करी आमिली धीर, भक्ति की कली विकासी।
भोला! भज श्रीकृष्ण, नित्य ही मथुरावासी॥

कथा चतुर्भुज जी की।

करौली के राजा चतुर्भुज जी ऐसे भगवद्भक्त और साधु सेवी थे कि उनकी उपमा देने को उनके समान कोई राजा नहीं मिलता। भक्तों के आने का वृत्तांत सुन कर इस प्रकार लेने को जाते थे कि जैसे सेवक और चाकर अपने स्वामी को लेने जाता है। भगवद्भक्तों को घर लाकर राजा और रानी अपने हाथों से चरण धोते, पूजा करते थे। नगर के चारों ओर चार २ कोस पर चौकी थीं, वहां चौकीदार रख छोड़े थे कि जो कोई मालाधारी आवें, उनका समाचार पहुंचावें। एक कोई दूसरा राजा, वेषसेवा का यह वृत्तांत सुन कर कहने लगा कि जब योग्य अयोग्य की समझ ही नहीं है, तो भक्ति की क्या बड़ाई है। राजा का पंडित कहने लगा कि मन में समझ लेते होंगे। राजा ने विमुख भाट को परीक्षा लेने भेजा और समझा दिया कि माला तिलक धारण करके स्वामी हरिदास बन कर राजा के पास जाना। वह भाट करौली में आया और अपने स्वामी का कहना भूल कर भाटों का भाटपना फैलाने लगा। जब राजा तक प्रवेश न हो सका तब उसे अपने राजा की शिक्षा का स्मरण हो आया। उसी भांति से राजा की सभा में गया, किसी ने नहीं रोका, जब राजा के सामने गया तो राजा ने अपने स्वभाव के अनुसार आगत स्वागत सब किया, भगवत् प्रसाद जिमाया, भगवच्चर्चा आरंभ की। भाट हूं हां करता रहा, राजा समझ गया कि किसी ने परीक्षा के लिये भेजा है। अंत में एक डिबिया में एक फूटी कौड़ी रख कर ऊपर से कीमखाब और मुशज्जर से लपेट कर ऊपर मोहर छाप लगा कर उसकी भेट की और उसे विदा कर दिया। भाट ने अपने राजा के पास आकर राजा चतुर्भुज के भक्ति भाव का वृत्तांत सुनाया और सब विदाई समेत डिबिया राजा के आगे धरदी। राजा ने डिबिया खोली और फूटी कौड़ी देख कर आश्चर्य करने लगा परन्तु भेद न समझा। तब उसी पण्डित ने समझाया कि स्पष्ट तो है कि वेष साधु का और भीतर से भाट है, भक्त नहीं है, यह बात राजा चतुर्भुज कहते हैं। राजा लज्जित हुआ और पंडित को भेजा। पंडित सत्संग को धन्य मान कर राजा के पास आया। राजा चतुर्भुज पंडित को आदर सत्कार सहित दंडवत् करके अपने महल में ले गये और बहुत दिन तक सत्संग का सुख लूटते रहे। जब पंडित जी चलने लगे तो राजा ने भंडार खोल कर कहा कि जो इच्छा हो, ले जाइये। पंडित जी ने कुछ न लिया। एक मैना राजा को प्यारी थी, साधुसेवी राजा ने वह ही पंडित जी को दे दी। पंडित जी मैना लेकर अपने राजा के पास आये। मैना सभा को भगवद्विमुख देख कर कहने लगी कि कृष्ण कृष्ण कहो, जिससे तुम्हारा उद्धार हो, यह संसार आगमापायी है कृष्ण भजन बिना किसी प्रकार उद्धार नहीं होगा। राजा ने सब वृत्तांत पूछा, पंडित जी ने कहा कि एक मैना से सब समझ लीजिये। मैं करोड़ों मुख से भी राजा चतुर्भुज के भक्ति भाव का वर्णन नहीं कर सक्ता। राजा को विश्वास हुआ और उसने भगवद्भक्ति और साधु सेवा अंगीकार की। जब राजा भगवद्भक्त हो गया,

तो मैना विदा होकर राजा चतुर्भुज के पास पहुँच गई। राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

कुण्डली

सासंगी हरि भक्तवर, भये चतुर्भुज भूप।
प्रेम समसेवें चरण रज, देखि साधु का रूप॥
देखि साधु का रूप, भांड दासों से चीन्हा।
पंडित को करि मान, संग बहु दिन तक कीन्हा॥
मैना वर्णी भक्ति, शांतिदा अभमय भंगी।
सुनिकरि कथा पवित्र, हुआ भोला सासंगी॥

कथा एक राजा की।

एक राजा ऐसा भगवद्भक्त हुआ कि संसार के सुख और ऐश्वर्य को अनित्य समझ कर सदा भगवत् के स्मरण भजन में लगा रहता था। जिसको कंठी तिलक धारण किये हुये देखता, भगवत् रूप जान कर दंडवत् करता। भगवत् उत्साह और भक्तों के हेतु ही अपना धन लगाता। भांड आदि भगवत् विमुखों को कुछ न मिलता। एक बार भांड सलाह करके साधुओं का वेष बना कर आये। राजा ने अपने भाव के अनुसार पूजन और सत्कार किया। भांड साज संभाल कर भंडई करने लगे। राजा प्रसन्न होकर बोला धन्य है। भगवद्भक्तों को कि अपने सेवकों को ढोल मृदंग बजा कर नाच गान करके कृतार्थ करते हैं बड़े आदर सहित सबको प्रसाद जिमाया। बिदा के समय मोहरों का भरा हुआ एक थाल सामने रख दिया भांड राजा का विश्वास देख कर और सत्संग होने से शुद्ध मन हो जाने से सब भगवत् शरण हो गये।

कुण्डली

ज्ञानी राजा एक था, भगवत् भजन प्रवीन।
सेवा करता साधु की, रहता हरि में लीन॥
रहता हरि में लीन, भांडरा साधु बन आये।
दीन्ह बहुतसा द्रव्य, दिव्य मिष्टान्न जिमाये॥
भांड देखि विश्वास, भक्त सब भये अमानी।
भोला! भजनें पूजि, आर्त अर्थार्थी ज्ञानी॥

कथा गिरधर ग्वाल की।

गिरधर ग्वाल जो भगवत् में सखा भाव रखते थे, अनुक्षण भगवत् के समीप हँसी खेल किया करते थे, अपने अंतर के प्रेम को बहुत छुपाये रखते थे परन्तु भगवच्चरित्रों के कीर्तन में गद्गद् वाणी हो जाती थी भला फिर प्रीति कहां छिप सक्ता है? कभी कभी बन में जाकर कीर्तन और नृत्य किया करते थे। एक बार मौजे मल्लिपुरा में भगवत् का राम चरित्र कराया और प्रेम में विवश होकर सब धन भगवत् भेंट कर दिया। भक्तों में उनकी ऐसी प्रीति थी कि जिसको साधु वेष में देखते थे, भगवत् रूप जानते थे। एकबार कोई मरा हुआ साधु देखा, उसका भी चरणामृत लिया। अयोग्य समझ कर ब्राह्मणों ने ऐसा करने को मना किया, न माने, कहने लगे 'भगवद्भक्त की कभी मृत्यु होती ही नहीं, यह तुम्हारा अविश्वास है, जो साधु को मृतक कहते हो'! भगवान् में सखा भाव रखते थे, इस कारण से ग्वाल पट्टयानी ग्वाल नाम विख्यात हुआ।

कुण्डली

सखा सयाने कृष्ण के, प्रेमी गिरधर ग्वाल।
अनुक्षण खेलें साथ ही, रहे न देह संभाल॥

रहे न देह संभाल, मृतक चरणोदक लीन्हा।
शंका कीन्ही लोग, उचित उत्तर तब दीन्हा॥
मरता मानें भक्त, मूढ से निपट अयाने।
भोला! शिक्षा दीन्ह, ग्वाल हरि सखा सयाने॥

कथा लालाचार्य की।

लालाचार्य श्रीरामानुज स्वामी की संप्रदाय में ऐसे भगवद्भक्त हुये हैं कि इनकी कथा सुन कर भगवच्चरणों में निश्चय प्रीति उत्पन्न होती है। गुरु ने आज्ञा दी कि भगवद्भक्तों में जितनी प्रीति और जितना विश्वास हो, उतना अच्छा है परंतु भक्त को बड़े भाई से कम कभी न समझना चाहिये। गुरु की इस आज्ञा के अनुकूल यह सर्वदा वर्तते रहे। एक दिन तिलक मालाधारी कोई मृतक साधु नदी में बहा जा रहा था, उसको निकाल कर अपने घर ले आये और विमान बना कर भगवत् कीर्तन करते हुये नदी पर लेजा कर उसकी दाह क्रिया की। पश्चात् इसके महोत्सव में ब्राह्मणों और सगोत्रों को निमंत्रण दिया। ब्राह्मणों ने निमंत्रण अंगीकार न किया, कहने लगे कि न मालूम किस जाति का था, इनका कोई न था, इसलिये हम इनके यहां का भोजन नहीं कर सक्ते, यह सुन कर लालाचार्य चिन्ता करते हुये, अपने गुरु के पास गए, वे इनको श्रीरामानुजजी के पास ले गए, दंडवत् करके सब वृत्तांत सुनाया। स्वामी जी कहने लगे कि वे सब लोग भगवत् प्रसाद की महिमा नहीं जानते, तुम चिंता मत करो तुम भोजन की सामग्री बनाओ, बैकुंठ से भगवत् पार्षद आकर भोजन करेंगे! ऐसा ही हुआ उत्सवके दिन भगवत् पार्षदों के झुंड के झुंड दिव्य वस्त्र और अलंकार धारण किये हुए ऐसे अद्भुत् स्वरूप से आए कि किसी ने स्वप्न में भी न देखे हों। सब ने आकर बने हुए प्रसाद का प्रेम पूर्वक भोग लगाया। ब्राह्मणों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसे ब्राह्मण कहां से आए हैं? सब ब्राह्मणों ने मिल कर द्वेष बुद्धि से यह सलाह की कि जब भोजन करके आवें, तो ऐसी हंसी करो कि लज्जित हो जांय। भगवत् पार्षद इनके अभिप्राय को जान गए और भोजन करके आकाश मार्ग से चले गए। यह चरित्र और प्रताप देख कर ब्राह्मण बड़े लज्जित हुए, अहंकार छोड़ कर लालाचार्य के सामने आये और लज्जा से आंख से आंख न मिला सके। पार्षदों के भोजन किये हुये पत्तावाले पड़े हुये थे, उनमें से ही प्रसाद लेकर भोजन करने लगे। पश्चात् लालाचार्य के चरणों में दंडवत् करके प्रार्थना करने लगे कि अब कृपा करके हम को अपना सेवक करलो! लालाचार्य ने कहा कि तुम्हारे ऊपर तो भगवान् की कृपा हुई है कि भगवत्पार्षदों के तुम को दर्शन हुये, इससे अधिक क्या कृपा चाहते हो। ब्राह्मणों ने विनय की कि अब हमको लज्जित करने की आवश्यकता नहीं है, अब तो अनुग्रह करने की आवश्यकता है। इतना कह कर सब ब्राह्मण भगवत् शरण हुए, और भगवद्भक्ति तथा वेष निष्ठा का प्रताप संसार भर में फैल गया।

कुण्डली

प्रेमी भगवत् वेष के, स्वामी लालाचार्य।
मृतक साधु घर लाय कर, क्रिया करी हर्षाय।
क्रिया करी हर्षाय, विप्र जीमन नहीं आये।
भगवत्पार्षद आय, जीम नभ मार्ग सिधाये॥
लज्जित होके विप्र, आय के झुंडन जैसी।
भोला! भये कृतार्थ, वेष भगवत् के प्रेमी॥

कथा मधुकर साह की।

मधुकर साह जी ओरछे के राजा भगवद्भक्ति में भी राजा हुये। इनका साधु वेष में अत्यंत प्रेम और विश्वास था। सचमुच जैसा मधुकर नाम था, वैसी ही इनकी रीति भी थी। जैसे भ्रमर सारग्राही होता है, इसी प्रकार यह भी सारग्राही थे। इन का नियम था कि जो कोई कंठी तिलकमाला धारी होता, उसका चरणामृत लेते और उसकी परिक्रमा करते थे। राजा के भाई बंधुओं को यह बात अच्छी नहीं लगती थी। एक दिन उन्होंने एक गदहे को बहुतसी मालायें पहिना कर और तिलक लगा कर राजा के महल में भेज दिया। राजा उठा, गदहे के चरण धोये, परिक्रमा की और विनय करने लगा 'वाहवा! आज तो मुझे निहाल कर दिया'! पीछे प्रसाद जिमा कर गदहे को विदा कर दिया, दुष्ट लज्जित हुये और उनको भगवद्भक्ति का विश्वास हुआ। हे मंसाराम! राजा ने 'निहाल कर दिया' यह वचन जो कहा था, उसका अभिप्राय यह है कि मेरे बड़े भाग्य हैं, जो मेरे राज्य में गदहे भी माला तिलक धारण करते हैं। जो कोई माला तिलक नहीं धारण करता, निस्संदेह बेपूंछ का गदहा है, वह गदहे से भी गया बीता है।

कुण्डली

मधुकर लोभी कमल ज्यों, त्यों ही मधुकर साह।
लोभी भगवत् वेष के, भली निकाली राह॥
भली निकाली राह, प्रेम वश गदहा पूजा।
लज्जित कीन्हे दुष्ट, भक्त ऐसा को दूजा॥
भोका! भगवत् वेष, पूजि जैसे हरि शंकर।
भगवत् में करि प्रेम, पशु में जैसे मधुकर॥

कथा हंस प्रसंग की।

एक राजा के कुष्ठ का रोग था। बहुतेरी औषधि की, रोग न गया। किसी वैद्य के कहने से राजा ने मान्सरोवर में जहां हंस रहते हैं, व्याधों को हंस पकड़ने को भेजा। जब हंस इन व्याधों के हाथ न आये तो वे साधुओं के वेष बना कर हंस पकड़ने गये। हंस व्याधों का कपट जान गये परंतु वेष को न मानना भगवद्धर्म से विरुद्ध है, ऐसा समझ कर हंस व्याधों के जाल में आगये। व्याध उनको पकड़ कर राजा के पास ले आये। इतने ही में भक्तवत्सल महाराज लाल किनारे की सफेद धोती धारण किये हुये, ढीला ढाला पैरों तक लटकता हुआ लम्बी २ बाहों का अंगरखा पहिने हुये, कंधा के ऊपर एक महीन दुपट्टा डाल हुये, शिर पर मरहठी पगड़ रख कर, अंगरखे की जेबों में वसन्तमालती आदि औषधियों की छोटी २ शीशी और पुड़िया डाले हुए, माथे पर गोरोचन का लम्बा त्रिपुण्ड धारण किये हुये, गले में रुद्राक्ष की माला शोभित वैद्यराज का स्वांग रच कर राजा की सभा में पहुंचे! राजा ने वैद्यराज का बड़े आदर सत्कार सहित ऊंचे आसन पर बैठाया और अपने रोग का वृत्तांत सुनाया, हंस पकड़वाने का वृत्तांत भी सुनाया। वैद्य महाराज ने राजा को आश्वासन दिया और कहा कि तुम्हारा रोग एक रूखड़ी लगाने से ही क्षण भर में कपूर हो जायगा, इन पखेरुओं को बंधन में से मुक्त करदो, इनको बंद रखने का कोई प्रयोजन नहीं है। इतना कह कर वैद्यराज ने कोई औषधि शरीर पर मल दी, जैसे गदहे के शिर पर से सींग चले जांय, इसी प्रकार राजा का कुष्ट

न मालूम कहां भाग गया और उसका शरीर निर्मल हो गया। राजा ने तुरन्त ही हंसों को छोड़ दिया और हाथ जोड़ कर विनय करने लगा। 'महाराज! यह राज्य और सम्पत्ति आपकी ही है, स्वीकार कीजिये!' वे वैद्यराज बोले, 'भाई! यह तेरा कथन ठीक है, सब कुछ मेरा ही है, परंतु हे राजन्! यह मनुष्य शरीर बड़े पुण्य से प्राप्त होता है, भगवद्भक्ति और साधु सेवा अंगीकार करके इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को सार्थक करले!' पश्चात् राजा ऐसा भक्त हुआ कि उसके राज्य भर में भक्ति की प्रवृत्ति होगई। हे मंसाराम! यह हंस प्रसंग समझने योग्य है कि जानवरों में तो ऐसी भक्ति हो कि भक्ति और वैद्य की महिमा सिद्ध करने के लिये अपने प्राणों की भी चिन्ता छोड़ कर जाल में आगये और मनुष्य जो ज्ञान से युक्त है, वह भगवत् भक्ति से विमुख है, तो वह मनुष्य कहां है, वह तो जानवरों से भी मूर्ख है, ऐसा मूर्ख भगवत् विमुख होने से नरक गामी होगा, इस कथा को सुन कर कौन ऐसा मूढ़ होगा, जो भगवद्भक्ति में तन, मन, वचन से रत नहीं होगा! हे मंसाराम! सबकी आशा छोड़ कर भगवत् भजन में रत हो जा!

कुण्डली

हंस विवेकी हैं वहां, जाने सार असार।
नश्वर देह असार से, काढे भगवत् सार॥
काढे भगवत् सार, विश्व सब जाने नश्वर।
भजे सदा विश्वेश, एक अच्युत परमेश्वर॥
भोला! सच्चा शोध, खोज मत कर झूंठे की।
जानें सार असार, प्राज्ञ नर हंस विवेकी॥

कुण्डली

न्यारे करदें क्षीर जल, वे हैं पक्षी हंस।
न्यारे करदें सत् असत्, वे निर्पक्षी हंस॥
वे निर्पक्षी हंस, देह निस्सार तजें जो
सब सारों के सार, एक श्रीकृष्ण भजें जो॥
भोला! भज विश्वेश, एक पल मती बिसारे।
मिथ्या तीनों देह, देह से भगवत् न्यारे॥

रिपु-करे-मिताई।

[ले० श्री रामेश्वर प्रसाद जी बाजोरिया]

माया-जल परिपूर्ण जगत्-सागर होता है उथल पुथल।
स्वारथ से अन्धे नाविकको क्यों दीखे सुदूर वह थल॥
सुखकी दुःखकी आंधी चलती करती है मन, प्राण विकल।
होवे कैसे इस हालत में आज कहो, कामना सफल॥१॥
आहा! एक है भूल और जो बारबार भटकाती है।
चले जहां से वहीं हमें फिर घुमा फिरे लेआती है॥
भूल यही है 'भूल गये हम अपना लक्ष्य और उद्देश'
इससे पहुंच नहीं पाते हैं उस प्यारे के सुन्दर देश॥२॥
रख उद्देश्य ध्यान में सुमिरण करते अपने प्रियका नाम।
खेवें इस छोटी तरणी को शक्ति हमारी लगा तमाम॥
करे भरोसा प्रियतम का ही, हो बस एक लक्ष्य यह ही।
होवेगी अनुकूल बात सब जो पहले विपरीत रही॥३॥
प्रबल थपेटें जल तरंग की आगे हमें बढ़ावेंगी।
जोरों से चलती हुई हवा, बढ़ने में हाथ बटावेगी॥
चन्द्र, सूर्य, बिजली भी मिलकर देंगे सुखमय हमें प्रकाश
जल मीठा देवेगा जो होवेगा मेघाच्छन्न अकाश॥४॥
बाधक सब होगये सहायक हुई सभी बातें अनुकूल।
पर्वत भी दुःख राशि होगई है सुन्दर गुलाब का फूल॥
सन्मुख होते देख रामनें, भी निज भुजा बढ़ाई है।
है यह सब प्रभाव प्रभुका ही, जो रिपु करे मिताई है॥५॥

वैराग्य और अभ्यास

गतांक से आगे।

[ले० बा० श्री राजेश्याम जी बी. ए., एल. एल. बी.]

वैराग्य की परिभाषा पातंजलि योग सूत्र में "दृष्टानुश्राविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्" अर्थात् जहां तक विषय, स्त्री पुत्र धनादि देखे हैं या सुने हैं, प्रत्यक्ष देखे हों अथवा अन्य पुरुष गुरु, सन्त महात्मा व शास्त्र इत्यादि से सुने हों उन सब की प्राप्ति की इच्छा के त्याग को और मन को वश करने को वैराग्य कहते हैं। यह वैराग्य की परिभाषा है और यह बहुत उच्च कोटि का वैराग्य है उसमें मनुष्य स्वर्गादि की इच्छा नहीं करता। यह शनैः २ होता है वैराग्य चार प्रकार का होता है १ यतमान, २ व्यतिरेक, ३ एकेन्द्रिय, ४ वशीकार।

प्रथम जिस वस्तु की इच्छा है उसको प्राप्त कर के मन हटाने का नाम यतमान वैराग्य है, कुछ न होने से मनुष्य के निमित्त यही अच्छा है जैसे भूखे मरने से चने की रोटी व नमक ही मिल जावे तो अच्छा है। इसके पश्चात् थोड़े से ही भोग को भोग करके मन हटा लेना व्यतिरेक वैराग्य कहलाता है, जैसे सवेरे का भूला हुआ सध्यां को वापिस आजावे। प्रायः देखा गया है कि मनुष्य लाखों रुपये पैदा कर चुका है, उसके नाती पोते तक होगए हैं परन्तु फिर भी चार पैसे की तरकारी के निमित्त कुंजड़ों के धक्के बाजार में खाते फिरते हैं। लड़का भी पेन्शन लेने के करीब है, लड़के के भी पोता होने वाला है, फिर भी नाती पोतों की बीमारी में डाक्टरों के यहां घन्टों समय नष्ट कर रहे हैं। साक्षात् संसार गन्दे नाले के समान एक बार नहीं अनेकों बार प्रतीत हो चुका है परन्तु नावदान के कीड़ों के समान उसी में बुलबुला लेने में आनन्द कर रहे हैं। ऐसे पुरुषों से यतमान और व्यतिरेक वैराग्य वाले बहुत ही अच्छे हैं। एकेन्द्रिय वैराग्य उस समय होता है जब मनुष्य सम्पूर्ण ज्ञान इन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों से उदासीन हो कर विषयों से मनको हटाले। उदासीन होने का अर्थ यह है कि उसमें रुचि न होना यह अर्थ नहीं कि बिल्कुल छोड़ दे जैसे बिल्कुल भोजन ही न करे। उसके लिये तो जो सामने आगया सो खालिया। इन्द्रिय प्रवृत्ति में उदासीनता के इस भाव को एकेन्द्रिय वैराग्य कहते हैं। वशीकार वैराग्य सबसे श्रेष्ठ है और यह एकेन्द्रिय वैराग्य के पश्चात् होता है। इसमें अभ्यासी जहां तक देखे या सुने पदार्थ हैं उन सबकी इच्छा को त्यागता है। वेद और शास्त्र इत्यादि गुरु वाक्यों से जितने सुख सुने हैं, संसार में जितने सुख देखे हैं इन सब का समूल त्याग वशीकार संज्ञा वैराग्य है। उपर लिखे हुए समस्त चार प्रकार के वैराग्य हैं। यह कोई नियम नहीं कि प्रथम यतमान तत्पश्चात् व्यतिरेक। इस प्रकार क्रमशः शनैः२ अभ्यास करना चाहिये। शुकदेव इत्यादि जन्म से ही त्यागी थे परन्तु यह आसाधारण बात है। ध्रुव प्रहलाद जन्म से भक्त थे परन्तु प्रायः ऐसा नहीं होता है। इसलिये शनै२ अभ्यास करना चाहिये जो बहुत दौड़ कर चलता है उसके गिर जाने का सन्देह रहता है।

वैराग्य की बड़ी दुर्दशा है जितना दुरुपयोग इस शब्द का है उतना किसी शब्द का नहीं है। "वैरागी" इसी वैराग्य का अपभ्रंश है। खेद की बात है कि कहां तो इन्द्रासन को त्याग देने तक की इच्छा कहां

अब मुट्ठी भर अन्न के लिये वैरागी आपस में चिमटा बजाते हैं। कहां रंभा जैसी अप्सराओं का मल मूत्र की पुतली कह कर त्याग ! कहां वैरागियों का वेश्याओं की जूती चूमना ! खेद की बात है कि आजकल केवल गेरुआ वस्त्र धारण करना ही वैराग्य हो गया है। गेरुआ वस्त्र धारण करना भेष है त्याग नहीं। बहुत से सी. आई. डी विभाग वाले कर्मचारी गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं परन्तु वे वैरागी नहीं हैं अर्थात् त्याग बिना अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता। प्रथम वैराग्य की आवश्यकता है।

मानस रोग बड़ा कठिन है। तुलसीदास जी ने इसे भली प्रकार वर्णन किया है काम क्रोध, मोह, लोभ इस रोग में वात, पित्त, कफ, की नाईं वेग करते हैं और जब ये सब एक साथ वेग करते हैं तो फिर मानस रोग असाध्य होजाता है, तब घोर सन्निपात् होजाता है अर्थात् चंचल मन के लिये काम क्रोधादिक शत्रुओं में एक ही पर्याप्त है और यदि सब एक साथ आक्रमण करें तो मन के टुकड़े २ हो जावेंगे जैसाकि कहा है:-

मोह सकल व्याधिन कर मूला, तेहिते पुनि उपजै बहु सूला।
काम वात कफ लोभ अपारा, क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करैं जब तीनौं आई, उपजै तब सन्निपात दुखदाई।

अब इस मानस रोग को शांत करने के लिये तुलसीदास जी भी वही भगवान् का बताया हुआ प्रतिकार बताते हैं अर्थात् मानस रोग को नष्ट करने के निमित्त "वैराग्य हो' समर्थ है यही अचूक 'मकरध्वज है' चौपाई स्पष्ट है।

जानिय जब मन विरुज गुसाईं, जब उर बल विराग अधिकाईं।

बहुधा लोग कहते हैं कि ज्ञानसे मन की चंचलता जाती है परन्तु ज्ञान बिना वैराग्य के नहीं होता तुलसीदास जी ने उत्तरकाण्ड में कहा है।

बिन गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहहिं हरि भक्ति बिनु॥

आगे चल कर उन्होंने कहा है कि वैराग्य और ज्ञान दोनों साथ २ होते हैं बिना एक के दूसरा अधूरा है, ज्ञान व वैराग्य मनुष्य के दो नेत्र हैं बिना एक के दूसरा काना है "ज्ञान बिराग नयन उर गारी" ज्ञान व वैराग्य दो अस्त्र हैं तुलसी दास जी वैराग्य को 'चर्म' अर्थात् ढाल और ज्ञान को 'असि' अर्थात् तलवार कहते हैं। जिस प्रकार योधा ढाल के बिना केवल तलवार से ही युद्ध करने में असमर्थ है क्योंकि वह केवल आक्रमण कर सकता है परन्तु शत्रु का आक्रमण बिना ढाल के नहीं रोक सकता है उसी प्रकार मनुष्य ज्ञान से काम, क्रोधादिक, पर आक्रमण करेगा परन्तु इनके आक्रमण को रोक नहीं सकता। जैमिनि ने काम पर जय पाने के लिये अपने को 'भूत' तक कहा कोठरी के कपाट तक बन्द कराये परन्तु वैराग्य की कमी होने से काम के आक्रमण को न रोक सके और श्रीशुकदेव जी को ज्ञान व वैराग्य दोनों होने से रंभा न पराजय करसकी। तुलसीदासजी ने इनका संम्बन्ध निम्नि लिखित दोहे में खूब निभाया है।

बिरति चर्म असि ज्ञान मद लोभ मोह रिपु मार।
जय पाइय सो हर भगत देख खगेश विचार॥

इस वैराग्य अथवा त्याग की महिमा कहांतक कही जाय। भगवान् स्वयं कहते हैं "सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज" अंत में तुलसीदास जी भी कहते हैं।

'श्रुति सिद्धान्त यहै उरगारी, भजिय राम सब काम बिसारी'।

योग, ज्ञान, भक्ति तीनों मार्ग सब एक हैं परन्तु प्रत्येकमें अभ्यास व वैराग्यकी आवश्यकता है।

क्योंकि मन सब में बाधक है और वह बिना वैराग्य व अभ्यास के वश में नहीं होता। त्याग ही सब का आधार है, त्याग ही ज्ञान है, त्याग ही भक्ति है त्याग ही योग है। वैराग्य का ज्ञान से जो सम्बन्ध है और योग से जो सम्बन्ध है वह ऊपर से साफ प्रकट है अब भक्ति का जो वैराग्य से संबन्ध उसको श्री रामचन्द्रजी शिवरी से कहते हैं, अर्थात् नौ प्रकार की भक्ति में छठी भक्ति वैराग्य है "छठ दम शील विरति-बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।" संक्षेप में किसी मार्ग के आप अनुयाई हो बिना वैराग्य व अभ्यास के आप कुछ नहीं कर सकते चाहे आप भक्ति मार्ग पसन्द करें अथवा योग अथवा ज्ञान।

प्रायः लोग अभ्यास व वैराग्य का नाम सुनते ही चौंक जाते हैं १६ वर्ष से कम आयु वाले तो इसको समझते ही नहीं और इससे अधिक आयु वाले कहते हैं कि हमने अभी युवा अवस्था पाई है अभी तो विषयों में प्रवृत्त होकर जीवन का आनन्द लूटें अभी हमारा वैराग्य से क्या मतलब ? वृद्ध अवस्था आई तब शरीर कांपने लगता है, अनेकों प्रकार के रोग शक्तियों के ह्रास होने से दौड़ते हैं। बिना स्वस्थ शरीर के ईश्वर भजन भी नहीं होता। जब शरीर में बल नहीं तो क्या अभ्यास होगा ? इसी प्रकार वृद्ध अवस्था भी बीत जाती है और मनुष्य पशुवत जीवन व्यतीत कर मृत्यु को प्राप्त होता है। परन्तु मनुष्य की यह काक बुद्धि केवल ईश्वर भजन के निमित्त है। यदि व्यापार अथवा अन्य संसारिक कार्यों में देखा जाय तो वे वैराग्य और अभ्यास का अहर्निश प्रयोग करते हैं। सात वर्ष की अवस्था से विद्यारंभ करा दिया जाता है और २५ या २६ वर्ष तक एम. ए. बी. ए पास करने में ही व्यतीत किये जाते हैं। तत्पश्चात् नौकरी में अविरल परिश्रम करते हैं। अपने २ हाकिमों को प्रसन्न करने के लिये सुबह ६ बजे से ९ बजे तक हाजरी देते हैं। फिर उल्टा सीधा भोजन करके १०, ११ बजे से कचहरी का कार्य आरंभ करके शाम के ६ बजे तक कार्य करते हैं फिर मिसिल लेकर रात के १२ बजे तक चक्की पीसते हैं। इन सांसारिक हाकिमों को प्रसन्न करने के लिये तो इतना घोर परिश्रम, परन्तु परमात्मा के लिये घंटा भी नहीं। इसी प्रकार व्यवसाई सुबह ६ बजे से रात के १२ बजे तक कार्य करते हैं। परन्तु यह सब मनुष्य सांसारिक कार्यों में ही अभ्यास करते हैं। जगत् पिता परमात्मा के निमित्त 'समय नहीं मिलता'। इसी प्रकार वैराग्य भी। जब मनुष्य वेश्या से प्रीति करता है तो सारी सम्पत्ति धन का त्याग करता है। इस समय स्त्री पुत्र माता पिता सब त्याग दिये जाते हैं। इसी प्रकार हम मनुष्य को अभ्यास और वैराग्य करते हुए अहर्निशि देखते हैं। परन्तु यह सब सांसारिक विषयों में ही देखते हैं पारलौकिक में नहीं। फल भी उनका ऐसा ही होता है। हाकिम सहाब तो प्रसन्न होने के नहीं। कभी क्रोध के आवेश में आकर 'सुस्त पेशकार' कह कर बरखास्त कर देते हैं सच कहा है 'भूप सुसेवित वश नहि लेखिय.'। व्यापार में भी एक मिनिट में जब भाव गिरा बस लाखों के दिवाले निकल गए, वेश्या ने जब धन ले लिया तो धक्के मार कर निकाल दिया और वह कुत्ते की तरह मारे २ फिरते हैं। इन से भी अधम वह नर हैं जो इतना अधःपतन होने पर भी परमात्मा का स्मरण नहीं करते और उसकी प्रीति के निमित्त सांसारिक विषयों का त्याग नहीं करते।

बिना अभ्यास और वैराग्य के व्यवहार में और परमार्थ में कहीं भी सिद्धि नहीं होती। मन

की चंचलता व्यवहार में भी दुःखदाई है, चचंल बुद्धि वाले का सांसारिक कार्य भी नहीं हो सकता जप, तप और ज्ञान की कौन कहे ? प्रथम मनको ही वश में करना है और यह प्रथम श्रेणी कल्याण की है यदि कपड़े भी रंगा लिये फिर भी अभ्यास और वैराग्य नहीं तो सब वृथा है।

"सोचिय यती प्रपंच रत, विगत विवेक विराग।"

मन में नाना पकार की उमंगें उठती हैं। जिस समय मन विषयों में जाता है इस काश्थिर रहना बहुत कठिन है जब मनुष्य निरन्तर वैराग्य कर के चित्त-वृतियों को रोकता है और दीर्घ काल तक समाधि लगाता है तब यह वश में आता है। स्वामी विद्यारण्य जी अपनी पंचदशी में कहते हैं कि मनोराज्य अर्थात् मन का भ्रमण निर्विकल्प समाधि द्वारा होता है।

शक्यं जेतुं मनोराज्यं निर्विकल्प समाधिना।

इसलिये प्राणी मात्र को उचित है कि इस दुःखागार असार ससांर को जैसे का तैसा गुरु द्वारा जान कर इस से छुटकारा पाने के लिये गुरुद्वारा वैराग्य और अभ्यास करे। इस के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। यह कमाई अवश्य युवावस्था में ही करनी चाहिये, बुढ़ापे में नहीं होने की। यह वही कमाई है जिसको लोक में भी कहते हैं "जवानी में कमाओ बुढापे में खाओ" इसलिये प्रिय पाठको ! इस में प्रमाद न करना चाहिये।

दो अक्षर

गतांक से आगे।

[ले० श्री दुर्गाप्रसाद जी गुप्ता]

गुसाईं जी का तात्पर्य यह है, कि मनुष्य के लिये अन्य कष्टसे होने वाले संयम नियम आदि साधनों की इतनी आवश्यकता नहीं है (क्योंकि वे मनुष्य के वांछित कार्य को पूर्णतया सिद्ध करने में असमर्थ हैं) जितनी आवश्यकता रामनाम जपने की है क्योंकि यही 'जपयज्ञ' सर्व कार्य सिद्धि कर्त्ता है "सुमरत सुलभ सुखद सब काहू, लोक लाहु परलोक निबाहू" रामनाम-स्मरण-सुलभता पुकार २ कर कह रही है कि अन्न जल की भांति इस सुलभकार्य की कितनी आवश्यकता है। परन्तु मनुष्य तो इस सुलभता से लाभ उठाना सीखाही नहीं, उसे तो कष्ट कर साधनों पर ही विश्वास है।

संसारी मनुष्यों का मन गृहस्थाश्रम में बहुत फँसा रहता है। स्त्री पुत्र और सम्पत्ति में मन की लगन खूब जम कर लगती है। गुसाईं जी ने इस सांसरिक सुखको लक्ष करके कितना मार्मिक दोहा कहा है, अभेद रूपक अलंकार का कैसा जीता जागता चित्रखैंचा है। महा-राज ! आपने तो संसार लोलुप मनुष्यों को सच्चा गृहस्थी बनाने में कसर नहीं छोड़ी है। अगर कोई अभागा फिर भी इस "हर-हित-चरण-शिशु 'को' रसना दशन 'की गोद में न खिला सके तो अप का क्या दोष ?

दंपति रस रसना दशन, परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हर-हित-चरण-शिशु, संपति, सहज-सनेह॥

राम नाम जपने का रस और रसना (जिह्वा) दम्पति है स्त्री पुरुष का जोड़ा है। दसन (दान्त) कुनबा वाले हैं। बदन (मुंह) अच्छा घर है। और हरहितकरण, शिशु है। अर्थात् शिवजी का हित करने वाले जो वर्ण (अक्षर) "रा" और "म" हैं यही शिशु (बालक) हैं। इस रामशिशु में जो स्वाभाविक प्रेम है वही इस घर की सम्पत्ति है।

अथवा जिस प्रकार स्त्री पुरुष के संयोग से बालक उत्पन्न होता है। उसी प्रकार रसना (स्त्रीलिंग शब्द है) और दशन (पुलिंग) के योग से "राम" शब्द रूपी शिशु उत्पन्न हुआ है। संसार में जिसको यह सुख प्राप्त है। उस को फिर किस वस्तु की आवश्यकता है?

धन ऐश्वर्य आदि सामग्री उपस्थित होने पर भी बालक बिना जैसे घर श्मशान के समान ऊजड़ प्रतीत होता है वैसे ही:-

रसना, साँपनि बदन बिल जे न जपहिं हरिनाम।

× × × ×

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरण बिलोचन जन जियजोऊ।
महामन्त्र जेइ जपत महेशू। काशी मुक्ति हेत उपदेशू॥
राम-नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता
कहुं कहां लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुण गाई

बस हद होगई, राम भी शायद अपना गुण गा सकें परन्तु नाम का गुण नहीं गा सकते।

सकल कामना हीन जे, राम भक्ति रस लीन।
नाम-प्रेम-पीयूष हृद, तिनहुं किये मन मीन॥

इस प्रेम पीयूष हृद में गोता लगाने के लिये मन तो ललचाता है। परन्तु क्या करें कुछ उपाय तो सूझता ही नहीं-उपाय यह है कि:-

राम राम जपते रहो, जब लग घट में प्रान।
कबहुंक दीन दयाल के भिनक परेगी कान॥

भ्रम

[ले० श्री मदन-गोपाल जी सिंहल]

पुष्प हार के भ्रम में तूने जिसको गले में डाला है।
सावधान रे मूरख मन वो माल न विषधर काला है॥
जिसे सुगंधित पुष्प जान तू चला सूंघने है रे मन।
वो कागज का फूल कहां उसमें सुगन्ध का है दर्शन॥
जिसे समझ कर सुधा, पान करने को है तू मतवाला।
नहीं सुधा है वो मूरख मन है वो तो विष का प्याला॥
जिसे सुख तू समझा प्यारे सुख का वो स्थान नहीं।
कहता सुख है गिरता दुखमें इसका भी कुछ ध्यान नहीं॥
सुन्दरता का बना उपासक क्यों है जग में भरमाया।
इसमें तो है नाहीं मूरख सुन्दरता की तो छाया।
इस छाया सी सुन्दरता पे मन मूरख क्या मरता है?
त्याग मोह क्यों नहीं श्याम सुन्दर की पूजा करता है॥
उसका ही जग में प्रकाश है सुन्दरता की ज्योत वही।
सुन्दरता की सीमा है वो सुन्दरता का सोत वही॥
रवि शशि ग्रह नक्षत्र आदि में उसका रूप समाया है।
सबके नयनों में उसने अपना स्वरूप बिकसाया है॥
जिस दिन उस सुन्दरता का आभास मात्र ही पायेगा।
उसी दिवस जगकी सुन्दरता से रे मन हट जायेगा॥
सभी स्नेह ममता के बन्धन पल भर में कट जायेंगे।
हो बाहर के बन्द अरे पट भीतर के खुल जायेंगे॥
उसी समय हिय में सुन्दरता लखकर तुझको होगा ज्ञान
'मदन' भूलता है जग में तू रे मन क्यों हो के अज्ञान॥

गोसाईं जी की प्राकृतिक उपमायें।

[ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी० ए०]

१. पाथ माथ चढ़े तृन तुलसी जो नीचो।
बोरत न वारि ताहि जानि आपु सींचो ॥७४॥

जल में और वस्तुएं डूब जाती हैं पर तृन और काठ नहीं डूबते। क्योंकि जल ने तृण और वृक्ष को पोषण कर बड़ा किया है और बांह गहे की लाज न्याय से इन्हें नहीं डूबाता। अतः गोसाईं जी की विनय है कि मैं माता पिता से परित्यक्त आपकी दया द्वारा पोषित हूं भगवन्! मुझे संसार में न डुबाइये।

२. सुख हित कोटि उपाय निरन्तर करत न पाय पिराने।
सदा मलीन पंथ के जल ज्यौं कबहुं न हृदय थिराने॥
यह दीनता दूर करिबे को अमित जतन उर आने।
तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिन्तामणि पहिचाने॥

संसारी जीव पेट के धन्धे में वा सुख की खोज में सब ओर फटफटाता है। चित्त की स्थिरता नहीं मिलती। यदि स्थिरता मिले तो चित्त की मलिनता वैसे ही दूर हो जैसे बहते पानी की स्थिरता से मैल नीचे बैठ जाता है। कैसा प्रकृति का अवलोकन है कितना फबता उदाहरण है। सांसारिक झंझटों से विरत होनेके लिये कैसी उपादेय युक्ति है!

३. जो पै चेराई राम की करतो न लजातो।
सोई साधु सुनि समुझि के पर पीर पिरातो।
जनम कोटि को कांदलो हृद हृदय थिरातो ॥१४२॥

इसी अस्थिरता के लिये जल ही का एक दूसरा उदाहरण यह है।

४ मानत भलहिं भलो भगतनिते
कछुक रीति पारथहिं जनाई।
तुलसी सहज सनेह रामवश,
और सबै जल की चिकनाई ॥५४॥

और उदाहरण जल के स्थान में गंगाजी से लीजिये।

५. यद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुं पुर सुजस घनेरो।
तजे चरण अजहू न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ॥८८

भर्तृहरि ने कहा है गंगा स्वर्ग से महादेवजी के शिर पर, शिर से पर्वतपर, पर्वतसे पृथ्वीपर, पृथिवी से समुद्र, समुद्र से पाताल में गई एक बार जो भगवत् चरण का परित्याग किया सो निरन्तर पतनोन्मुख ही होती गई। इसके विपरीत चञ्चल जन भी भगवच्चरण ग्रहण कर स्थिरता लाभ कर सकता है।

६. यद्यपि परम चपल श्री सन्तत थिर न रहति कतहूं
हरिपद पंकज पाइ अचल भइ कर्म वचन मनहूं॥

भाव नया नहीं है। भागवत में श्लोक है।

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतः,
तथापि तस्यांघ्रि युगं नवं नवं।
पदे पदे का विरमेत तत्पदात्,
चलाऽपि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित्॥

भगवच्चरणानुशीलन में नवीनता सदा बनी रहती है। अतः वे कमनीय हैं। कहा भी है 'पदे पदे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं कमनीयतायाः' भगवच्चरणानुचिन्तन से ऊब नहीं होती। लक्ष्मी का नाम चञ्चला है। किसी के यहां वे स्थिर हो कर नहीं टिकती। पर भगवच्चरण की कमनीयता ने

उनकी प्रकृति ही बदल दी।

हे हरि कवन जतन सुख मानहु।
ज्यों गज दशन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु॥
देखत चारु मयूर नयन शुभ बोल सुधा इव सानी।
सविष उरग आहार निठुर अस यह करनी वह बानी॥

कहते भी हैं, हाथी के दांत खाने के और होते हैं दिखाने और। वैसे जीवों के आचरण दिखाने को बड़े पर वास्तव में काम के छोटे होते हैं। और तब जब कि वह जानता है भगवान् अन्तर्यामी है। मयूर के नयन अथवा पंखों पर के नयन (लोचन मोर पंख कर लेखा) और बोल प्यारे बोध होते हैं, पर वह विषैले सर्प का भी भक्षण करता है। कैसा उसका बाहर और कैसा भीतर है, पर जीव के यों सदोष होने पर भी दीनबंधु भगवान् से दया ही चाहिये।

तुलसिदास निज गुण विचारि करुणानिधान करु दाया। १९

सांसारिक जनों के आचरण का उदाहरण

दै दै सुमन तिल बासि के खरि परिहरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे मन मेचक तन श्वेत॥१९०॥

प्रकृति से कैसा अच्छा देते हैं:-

संसार के स्वार्थी लोग हृदय के काले पर बाहर से ऊजले वा श्वेत होते हैं वे तिल को फूलों से बास कर सुगन्धित करते हैं यह तिल पर कृपा नहीं है तिल को तो पीड़ा देते हैं। कोल्हू में डाल के पेलते हैं और तब उसका हीर रूप तैल लेकर खली का परित्याग कर देते हैं। और लीजिये।

एक सनेही सांचिलो केवल कोशल पाल।
प्रेम कनोड़े राम सो नहिं दूसरो दयाल॥
तन साथी सब स्वारथी सुर व्यवहार सुजान।
आरत अधम अनाथ हित को रघुबीर समान।

नाद निठुर समचर शिखी सलिल सनेह न सूर।
शशि सरोज दिनकर बड़े पयद प्रेम पथ कूर॥ १९१॥

हरिण जिस नाद रूपी ज्ञान को प्यार करता है वह उसे उलटे पकड़वा देता है। दीपक को पतंगा प्यार करता है पर दीपक उसे जला डालता है। मछली जल को प्यार कर उसी की शरण में निवास करती है पर जल धीवर को न रोक मछली को पकड़ी जाने देता है। चकोर चन्द्र को चाहता है पर चन्द्रमा की कला घटा करती है। कमल सूर्य को देख खिलता और प्रफुल्लित होता है पर जल के सूख जाने पर सूर्य कमल को सुखा डालता है। निर्जीव पदार्थों पर दोषारोपण निरर्थक है तथापि कार्य से कारण का अनुमान कर दोष दिया है। ये उदाहरण प्रकृति से खोज कर दिये हैं। और व्यवहार के उदाहरण:-

यही ते मैं हरि ज्ञान गवायो॥ टेक॥

परिहरि हृदय कमल रघुनाथहि।
बाहिर फिरत विकल भयो धायो॥
ज्यों कुरंग निज अङ्ग रुचिर मद।
अति मति हीन मरम नहीं पायो॥
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल।
परम सुगन्ध कहां तें धौं आयो॥
ज्यों सर विमल बारि परि पूरण।
ऊपर कछु सिवार तृण छायो॥
जारत हियो ताहि तजि हौं शठ।
चाहत यहि विधि तृषा बुझायो॥ २४५॥

कस्तूरी मृग तिब्बत दार्जिलिङ्ग की ओर होता है। वहां गोसाईं जी कैलास यात्रा में गये हों तो विदित नहीं पर उदाहरण प्रकृति अवलोकन का है। सिवार या शैवाल जल को जलाता और गरम रखता

है यह उसकी प्रकृति सहज ही में सब के ध्यान में नहीं आती है पर कवि ध्यान करता है और अवसरपर उपयोग में लाता है।

काम भुजङ्ग डसत जब जाही।
विषय नींब कटु लगत न ताही॥ १२७ ॥

यह पंक्ति मैंने अनेक बार पढी थी पर भाव और अर्थ पर ध्यान तब गया जब सचमुच सर्प के काटे गये एक बालक को विष की चढ़ने की परीक्षा के लिये एक सयाने सज्जन ने नमक चखने को कहा और उसने कहा कुछ स्वाद नहीं है। फिर नीम की पत्ती दी गई और वही उत्तर मिला। गोसाईं जी अवलोकन ध्यान कर मन में रखते और अवसर पर निकालते भी थे। लेख बढा जाता है थोड़े से उदाहरण और देकर संतोष करूंगा।

बिनु हरि भजन इंदारुन के फल, तजत नहीं करुआई॥
तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस, सालन साग अलोने
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत, कबहुं न निकसत सार
सरुष बरजि तरजिये तर्जनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है
इहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनि देखत मरि जाहीं
नीच जन मन ऊंच जैसो कोढ़ मे की खाज ॥२२०
राम नाम महा मणि फणि जग जाल रे।
मणि लिये फणि जिये ब्याकुल बेहाल रे॥ ६८॥
बंणु करील श्रीखण्ड बसन्तहिं दूषण वृथा लगावै।
सार रहित हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहु कहं पावै॥११५
अपराधी तऊ आपनो तुलसी न बिसरिये।
टुटियौ बांह गरे परै फूटेहु बिलोचन, पीर होत हितकरिये
तनु जनतेउ कुटिल कीट ज्यौं तज्यौ मातु पिता हू॥२७६
बिटप मध्य पुत्रिका सूत्र महं कंचुक बिनहिं बनाए।
मनमंह तथा लीन नाना रस प्रगटत अवसर पाये॥१२५
बिनु बांधे निज हठ शठ पर बस परेउ कीर की नाईं।
कृमि भस्म बिट परिणाम तनु
तेहि लागि जग वैरी भयो॥१३७॥

संभव है कि ये उदाहरण गोसाईं जी ने पुस्तकावलोकन से जाने और उपयोग किये हों पर इन्हें उपयुक्त स्थान पर प्रयुक्त कर ऐसा अपना लिया है जैसे कोई दूध पीकर उससे उत्पन्न बल का अपनी इच्छानुसार प्रयोग करता हो। भक्ति के पाठकों के हृदय में भगवद्भक्ति सम्बन्धी विचार परम्परा उदय हों इसीलिये यह लेख संकलित किया गया है।

अधिक अब सहि न जात रघुबीर

[ले० श्री पं० रमाशंकर जी मिश्र 'श्रीपति'

मीत हित् जे अहहि आपने, देत आज ते पीर।
बिधहिं बैन उर मांहि बधिक के, गरल बुझे जनु तीर।
तुमहीं लखहु अनाथ-नाथ! यह, हृदय बन्यो तूनीर॥
बिसरायौं सुखसान साज जग, जिन लगि दह्यो शरीर।
सालत हाय निठुर तेई उर जिनहिं दिखायो चीर॥
करत रीति-अनरीत करत वे, धरहिं प्राण किमि धीर।
ह्वै है अब उद्धार कौन बिधि, परयो पींजरे कीर।
बाढी जरनि, भार यह जीवन, नैनन उमड्यो नीर।
सुनियत, 'पतित शरण तुम' श्रीपति! लखि पतितन पै भीर

दुःख का वाटर प्रूफ़

[ले० श्री वैद्य अमृतलाल सुन्दर जी]

देखते हैं कि कितनी ही बधुओं की अपनी सासुओंसे नहीं पटती। बहुतसे सेवकों की अपने स्वामियों के साथ नहीं बनती। बहुतोंका अपने-पड़ोसियों

के साथ मेल नहीं रहता। कइयोंकी अपने सगे सम्बन्धियों के साथ अन-बन रहती है और कइयोंकी अपनी जाति-बिरादरी वालोंसे नहीं पटती। बहुतसे विद्यार्थियों की अपने गुरु या मास्टर के साथ नहीं बनती। इससे सब एक दूसरेकी शिकायत किया करते हैं और कहते हैं कि वे सब हमको अकारण ही बहुत दुःख देते हैं। यही समझ कर वे अपने मनमें बहुत झुंझलाते और दुःखित होते हैं। इस प्रकारके मनुष्य लाखों और करोड़ों हैं और उनका दुःख कम हो-दूर हो-ऐसे उपायोंकी आवश्यकता है।

इसके लिये सन्तजन कहते हैं-भाइयो ! तुम दूसरों के दोष निकालने और उनकी भूलें देखनेसे पहले जरा विचार करो कि उसमें तुम्हारी भी कुछ भूल तो नहीं है ? तुम्हारे निजके व्यवहार और स्वभावमें तुम कुछ फेर फार-सुधार-कर सको ऐसी बात तो नहीं है ? तुमको कोई सच्ची बात कहे तो भी तुम उसे न सुन सको, यह बात तो नहीं है ? बहुत छोटीसी बात हो और उसको 'राई से पर्वत' मान बैठो एवं व्यर्थ ही मन ही मन जला करो, सो तो नहीं है ? किसी दूसरे के विषय में बात हो रही हो और तुम तुम्हारी ही मान बैठो, ऐसा तो नहीं है ? तुम्हारा अपना मन-माना न हो तब जल उठो; तुमको तुम्हारे कर्तव्य-कर्म का ज्ञान न हो एवं तुम्हारा धर्म पालन में तुम भूल करते हो, ऐसी बात तो नहीं है ?

पाठक और पाठिकाओ ! जरा सोचो। हमको तो ऐसा मालूम होता है कि इनमेंसे कोई न कोई अवगुण तुममें होगा और उसीके कारण तुम्हारी दूसरों के साथ नहीं पटती। पराये दोष निकालते समय पहले जरा अपनी प्रकृति और स्वभाव तो देखो। दूसरों के दोष देखनेसे पहिले जरा अपनी कार्य, प्रणाली की ओर तो ध्यान दो। यह सब देखोगे या विचारोगे तो तुम्हारी समझमें आजायगा कि दूसरोंकी भूलें, औरों के दोष निकालने में बहुत सी तो तुम्हारी अपनी ही भूलें हैं और कुछ सामने वालों की हैं। इनसे बचनेके लिये कुछ उपयोगी सूचनाएं याद कर लेनी चाहियें और उसी प्रकार बर्ताव करनेका प्रयत्न करना चाहिये ! यथा, तुम्हारे विरोधी जो कुछ बातें करें उन सब बातोंको तुम तुम्हारे ऊपर न लेओ; और ऐसी निराधार बातोंकी एवं इधर उधरसे सुनी हुई बातोंकी; और किसी कारणसे कुछ न कुछ नमक, मिर्च लगा कर तुम्हारे पास आई हुई बातोंको, परवा न करो। इतनी दृढ़ता रख सको तो बहुत प्रकारके क्लेश घट जांय और अनेक समय मनमें होनेवाली व्याकुलता मिट जाय।

दूसरे, ऐसा विचारना कि इस दुनियामें अनेक भिन्न भिन्न प्रकृतियों के मनुष्य होते हैं। इन सबके स्वभाव भिन्न भिन्न होते हैं उनके आसपासका वातावरण भिन्न भिन्न होता है। उनकी शिक्षा, दीक्षा भिन्न भिन्न होती है। और हरएक मनुष्यके आचार- विचारोंमें भी कुछ न कुछ फेर फार होता ही है। बात यह है कि विविधता और विचित्रता तो मनुष्य, स्वभावमें और प्रकृतिमें रहेगी ही। इसलिये तुम यदि अपने मनमें ऐसा विचारते हो कि ये सब मेरे जैसे विचारोंवाले हो जायं तो ठीक हो, परन्तु यह तो कभी होनेका नहीं। हमारे लिये दूसरे लोग अपना आचार, विचार, अपनीरीति, भांति और अपनी आदत बदल डालें, ऐसा होता नहीं। वे जिस मार्ग पर चलते हैं उसी पर चलते रहेंगे और जैसा व्यवहार बर्ताव करते हैं वैसा ही करते रहेंगे। इसलिये यदि सद्भाव, सम्मति बनाई रखनी हो और अन्तःकरणमें

शान्ति प्राप्त करनी हो तो अपने आपके स्वभावमें फेर फार करना चाहिये। कारण हम संसार को अनुकूल नहीं बना सकते-नहीं फेर सकते, परन्तु हम अपना स्वभाव बदल सकते हैं। यदि मुफ्त के झंझट, झगड़ोंसे बचना हो तो अपने स्वभाव को वशमें करना सीखना चाहिये और अपनी चाल ढालमें सुधार करना चाहिये।

इसके सिवाय इस विषयमें यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि वाटर प्रूफछत्ते Water proof umberlla के ऊपर चाहे जितना वर्षा हो परन्तु वह जल बाहरका बाहर ही चला जाता है, छत्तके भीतर नहीं आता। उसी प्रकार तुमको भी तुम्हारे विरुद्ध की सब टीका, टिप्पणियों और सब बातोंको बाहर-दूर रखनी चाहिये। ऐसी बातोंको अत्यन्त नगण्य समझ कर हृदय में बैठने - स्थान करने, नहीं देना चाहिये। यदि इस प्रकार करना आजाय तो इससे भी मनकी अनेक व्याधियां कम हो सकती हैं। इसलिये याद रखना कि जगत्में बहुतसी बातें हमको न रुचने वाली होती हैं; बहुतसे बनाव हमको अच्छे न लगनेवाले बन जाते हैं और बहुतसे लोग हमको अच्छे न लगें ऐसे होते हैं। तो क्या हम इन सबको दुनियांके बाहर निकाल दें? यह तो असम्भव है, हो ही नहीं सकता। सब अपनी अपनी रीतिके अनुसार ही बर्ताव करेंगे। इसलिये हमको अपनी आदतें, अपना स्वभाव सुधारना चाहिये और इन सबका असर अपने पर न हो ऐसा "वाटर प्रूफ छत्ते" की तरह बनना चाहिये। तब ही सुख से रह सकेंगे और शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। जगत्के छोटे मोटे कार्यों के, साधारण उलट पलट के धक्के अन्तःकरण तक न पहुंचे, ऐसे बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

सावधान।

एक साधु जंगल में एक राह के किनारे मिट्टी का तकिया लगाकर पड़े थे। उधर से कुछ मनुष्य निकले। उस साधु को उस तरह पड़ा हुवा देख बोले, "देखो! साधु होकर भी तकिया बिना नहीं सोता"

यह कह कर वह तो आगे बढ़ गये। साधु बाबा ने सोचा कि लोग कहते तो ठीक ही हैं। यह विचार कर तकिया मिटा समतल भूमि पर लेट गये। जब वे लोग लौट कर आये तब साधु को समतल भूमि पर पड़े देख कर कहने लगे, "देखो कैसा साधु है। जरासी कहने की समाई नहीं है, अभी तक कोच को नहीं छोड़ा।" अस्तु।

वे लोग तो अपनी बातें करते २ अपने राह चल दिये। साधु बाबा सोचने लगे:-

दुनियां में बाबा नहीं है गुजारा किसी ढब से॥
घरमें रहे तो कैसा योगी, बनमें रहे विपत का भोगी।
मांगे भीख बतावें लोभी, त्यागी बना है कब से॥
बोले तो बाचाल बतावै, अनबोले गर्वाय रहा है।
करे खुशामद हार गया है, दबे हमारे डर से॥
धर्म करे तो द्रव्य लुटावे, नहीं करे तो सूम बतावें।
कहा कहूं कछु कही न जावे, प्रीति करे मतलब से॥
राम भजन बिन पशु बतावें, भजे तो विघ्नी विघ्न मचावें
रामप्रताप हरि गुण गावे, डरिये कुफर गजब से॥

ठीक है दुनियां का तो काम ही चर्चा करने का है। लेकिन बुद्धिमान् वही है जो किसी के कहने की तरफ ध्यान न देकर अपना कार्य करता रहे। साधकों को इन सब बातों से सावधान रह कर अपना साधन करते रहना चाहिये। जो लोगों के कहने पर अपना

कर्तव्य छोड़ देते हैं वे भूल करते हैं और आखिर में उन्हें पछताना पड़ता है। इसलिये विशेष सावधान रहना चाहिये। दुनियां के बकने की तरफ ध्यान ही न देना चाहिये।

चौथि भक्ति मम गुणगण, करहि कपट तज गान।

गतांक से आगे

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

ईश्वर के गुण गान करने में कपट कराने वाले पांच विषय यानी १ शब्द, २ स्पर्श, ३ रूप, ४ रस, ५ गंध यही हैं। ये पांचो पंच महाभूतों से उत्पन्न हुए हैं। शब्द आकाश से, स्पर्श वायु से, रूप तेज से, रस जल से, और गंध पृथ्वी से उत्पन्न है हुवा। इस को भोगने वाली पांच इन्द्रियां हैं, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका। प्रत्येक विषय अपने आधीन होने वाले को पुरुषार्थ के योग्य नहीं रहने देता।

(१) श्रोत्र अर्थात् श्रवणेन्द्रिय की प्रबलता मृग में होती है। यह वीणा का नाद सुन कर इतना मोहित हो जाता है कि इसे अपने प्राणों का भी भय नहीं रहता। तभी तो व्याधा लोग बहुधा सुरीली वीणा द्वारा मोहित कर पकड़ लेते हैं। इस शब्द प्रेम की पराकाष्ठा के बारे में किसी कवि ने मानो मृग ही के द्वारा यहां तक कह डाला है कि-

दो०-नाद शब्द में वश कियो, माँस बेंचि धन लेव !
मृग छाला पर गाइयो, यह मांगे मोहि देव ॥

(२) त्वचा अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय सुख की लालसा हाथी को विशेष रहती है, इसी से वह कृत्रिम हथिनी के प्रेम से गढ्ढे में पड़ कर मनुष्यों के वश में होकर के पकड़ा जाता है। हाथी और हथिनि के प्रेम को आरण्यकांड में श्रीभगवान ने अपने श्रीमुख से वर्णन किया है:-

चौ०-संगलाइ करिणी करि लेहीं,
मानहु मोहि सिखावन देहीं ॥

(३) चक्षु अर्थात् रूप विषय में मोहित होकर प्राण देने वाले पतंगों का नाश होना प्रसिद्ध ही है। जैसे कहा है।

दो०-कहि अहमद कैसे बने, अनचाहत को संग।
दीपक के मन में नहीं, जरि जरि मरत पतंग ॥

(४) जिह्वा अर्थात् रस का स्वाद लेने वाली मछलियों की रसनेन्द्रिय बलिष्ठ होती है। इसीसे बांस में लगे हुए खाने के पदार्थ को देख कर उसे अपने मुंह में दबाते ही फंस कर अपने प्राण को खो बैठती है।

(५) नासिका अर्थात् घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध है, सुगन्ध का रसिया भौंरा कमल की सुवास से मुग्ध होकर सन्ध्या हो जाने पर भी उसी पर बैठा रहता है और कमल के सिकुड़ जाने पर उसी में रह जाता है। भौंरे में इतनी शक्ति रहती है कि वह लकड़ी को काट सकता है, परन्तु कमल को काट कर निकल जाने की उसे सुध ही नहीं रहती और बहुधा कमल के साथ नष्ट हो जाता है।

सवैया।

जब बीति है राति प्रभात सराप,
रवि की किरनें तम को हरि हैं।

खिलि हैं दल उत्पल के तब ही,
　　मिलि हैं मग बंधु कली झरि हैं ॥
इमि सोचत ही अलि पंकज में,
　　समझौ नहिं दैव कहा करि है ।
मदमाते मतंग ने तोरयो सनाल,
　　सरोरुह षट्पद सो मरि है ॥

किंचित् तो सोचना चाहिये कि एक ही विषय के आधीन होने वाले प्राणी जब इस प्रकार फंस कर प्राण गंवा देते हैं तो मनुष्य जिसकी पांचों इन्द्रियां प्रबल होतीं हैं । उसका क्या ठिकाना है ? यदि वह इनके आधीन बना रहे तो उसके नाश हो जानें में कोई आश्चर्य नहीं ? यह दशा अवश्य ही उन प्राणियों की होती है, जो विषयांध होकर उन्हीं में पगे रहते हैं, कारण, विषयों का जितना अधिक सेवन किया जाय उतने ही वे अधिक बढ़ते जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि में घी डालने से वह अधिक अधिक प्रदीप्त होता जाता है ।

बुद्धिमानों का कथन है कि प्रत्येक् पदार्थ का दो प्रकार से उपयोग हो सक्ता है । एक सत् दूसरा असत्, शरीर के रहते हुए विषयों का सर्वथा त्याग नहीं हो सकता तो फिर किस तरह से इनका त्याग किया जाय । अनुभवी लोगों का कथन है कि विषयों का यथोचित् रीति से सेवन करना ही उनके त्याग के तुल्य है । विषयों को विधिवत् सेवन करने से जो लाभ होते हैं, उन्हें थोड़े ही में दर्शाते हैं । देखिये संखिया कैसा प्राण नाशक विष है, परन्तु वैद्यों द्वारा शुद्ध कर नियमित मात्रा में दिये जाने पर वह मरणोन्मुख प्राणी को भी बचा लेता है । इसी प्रकार विषयों का सदुपयोग करके मनुष्य भक्ति यानी जीवन मुक्ति पा सक्ते हैं । ज्ञानी पुरुष इन्हीं विषयों को जिन्हें बहुधा लोग बिना सोचे अयोग्य कह बैठते हैं, उन्हीं को योग्य बना कर भोगते हैं ।

(१) श्रवणेन्द्रिय का दुरुपयोग कुवाच्य अथवा अश्लील गीतों को सुन कर आनन्द मानने से होता है. बहुधा लोग गणिका का गाना सुन कर विशेष कामासक्त होते हैं । यथार्थ में संगीत के द्वारा तल्लीन होने का स्वभाव डाल कर ईश्वर के भजनों में अथवा साधुओं द्वारा उपदेश और परमेश्वर के गुणानुवाद सुन कर श्रवणेन्द्रिय का सदुपयोग करना चाहिये ।

(२) स्पर्शेन्द्रिय का दुरुपयोग पर स्त्री गमन से होता है अथवा अपनी ही स्त्री के साथ विधि को त्याग कर दिन रात आसक्त होने से होता है. परन्तु अपनी धर्मपत्नी से नियत तिथियों में शास्त्र की आज्ञानुसार प्रेम और व्यवहार रखने से ऐहिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति होती है । वास्तविक भक्ति मुक्ति की इच्छा वाले को तो नारी घर की या बाहर की दोनों दुःखदा हैं । जैसे अग्नि घर की या बाहर की होवे स्पर्श मात्र से ही जलाती है, किंचित् भी रियायत नहीं करती कि मैं इसके घर की अग्नि हूं, इसी प्रकार नारी को जानो । निर्भय दासजी ने कहा है,

'अनारी मन नारी नरक की खान'।

इससे चित्त हटा कर संत पद रज स्पर्श अथवा महात्माओं से भेट भी स्पर्शेन्द्रिय सुख का उदाहरण है ।

(३) रूप विषय का दुरुपयोग इस प्रकार होता है कि स्त्री तो पुरुष की ऊपरी छबि पर और पुरुष स्त्री के बाहरी सौन्दर्य पर मोहित हो जाते हैं ।

चाहिये कि वे इस ऊपरी सौन्दर्य का लक्ष्य न करके उसके भीतरी घृणित पदार्थों का विचार करें। जिस मुख को देख चन्द्र मुख की उपमा कर मानता है उसके प्रति पक्ष में लार, थूक से लिपटा हुआ भावना करै और जिन स्तनों को देख अमृत कलश मानता है उनके विरोध में मांस से भरे हुए चमड़े के थैलों की भावना करे। निदान गृहस्थाश्रम के पश्चात् ऐसे ही सुविचार करते करते परिणाम में उस शक्तिमान् परम रूप वाले परमेश्वर के स्वरूप पर मोहित हो जाने की टेव डाले। कोई शंका करे रूप स्वाभाविक ही आकर्षण करता है। उसका समाधान यह है कि सर्व रूप उस सर्व शक्तिमान् परमात्मा का ही निर्माणित किया हुआ है, जिसने यह सुन्दर रूप बनाया है, उसका सौन्दर्य अत्यन्त रमणीय होना चाहिये, इससे उस परमात्मा की खोज करना चाहिये जिससे यह सर्व अघटित घटना ज्ञात है।

(४) रस विषय का सेवन सभी को करना पड़ता है नहीं तो शरीर हीन रह सकेगा, परन्तु भोजन के विषय में एक तो ध्यान रखना चाहिये कि खाने वाले पदार्थ कोई भी हों, परन्तु उनका शुद्ध और उपयोगी होना आवश्यक है, स्वादिष्ट भोजनों ही का अभ्यास ठीक नहीं। दूसरे इसका सेवन इतना ही किया जाय कि जिससे शरीर की स्थिति बनी रहे। कहावत प्रसिद्ध है कि "अन्न तारे, अन्न मारे" अर्थात् नियमित भोजन जीवन की रक्षा और विशेष भोजन जीवन का नाश करता है।

इस विषय में एक छोटा दृष्टांत है। दो किसान थे जिनके दो खेत बराबर के थे आपस में परामर्श करके साझा ठहराया और दोनों ने बराबर धन खर्च करके खेतों को जोत कर चने का बीज बोया। समय पर जब खेती पकने को हुई तब विचार किया कि घूट (होले) भूने जांय। सर्व सम्मति होने पर खेत परही होले भूने गये। एक किसान अकेला ही था दूसरे के तीन लड़के थे वे भी वहां उपस्थित थे। भुन हुए होले वे भी खाने लगे। जब पहिले किसान ने विचार किया कि ये चार हैं और मैं अकेला हूं खाने की मना भी नहीं कर सकता। यह संकल्प विकल्प करके मन में निश्चय किया कि ये तो एक २ दाने को निकाल कर खाते हैं और मैं यों ही भसका मारूं तो बराबर हो जाऊंगा। फिर क्या था भसका मार कर खाने लगा, जिह्वा पर स्वाद लग जाने से खाता ही रहा खाते २ पेट फूल गया और दूसरे दिन मर गया। उसकी एक बूढ़ी मा थी। लड़के का मरना और सर्व वृत्तांत सुन कर खेत पर दौड़ी गई और जार बेजार होकर रोने लगी और इधर उधर के खेत के आदमी भी दौड़े आये और बड़ा आश्चर्य करने लगे बुढिया रोती हुई कहती जाती थी कि।

पूत न मरते सझियन मारे।
सझियन फूंक२ खाये पूतने भसका मारे॥

सत्य है लोक में भी प्रसिद्ध है चना चुगल मुंह लगा बुरा होता है यानी हानि ही करता है। इसके सिवाय रसकी इन्द्रिय जो जीभ है उसका दूसरा विषय वाणी है। उत्तम मधुर वचनों से लोग संसार को वश में कर लेते हैं। इसके सिवाय सत्य बोलना सद्गुणों का कथन करना और परमेश्वर का भजन करना ये ही वाणी के सदुपयोग हैं।

(५) गंध विषय पर आसक्ति होने से इन्द्रियां विलासिनी बन कर काम वासना की ओर मुड़ती हैं

इसका सदुपयोग मन की प्रसन्नता और शारीरिक, मानसिक आरोग्यता के हेतु होना चाहिये। यथार्थ सुवास तो सदाचार और ईश्वर की भक्ति से यश और मुक्ति आदि की प्राप्ति ही है। जो सर्वथा सभी को वांछनीय है।

उपरोक्त कथनानुसार विषयों का सदुपयोग करते हुए कपट छोड़ कर ईश्वर के गुणों का गान करना चाहिये।

गोपदेवी लीला।

(ले० भक्त शिरोमणि कविरत्न श्री मथुरा प्रसाद जी जयपुर)

श्री वृषभानु नन्दिनी अपने पिताके राज भवन में विराजमान् हैं। ललिता और विशाखा दो मुख्य सखियां आयकर अपनी विनती ऐसे सुनाती हैं।

पद नं० १

सुनिये किशोरी लाड़िली एक विनती हमारी।
तुमसी नहीं है कोई भी जगमें हमारी प्यारी॥
करती हो तुम लड़ैती दिन रैन जाको चिन्तन।
है रूप गुण को भाजन मोहन विपिन विहारी॥
बरसानें में वह नितही आवें हैं श्याम सुन्दर।
ग्वालों के संग नटवर अतिही सुघर मुरारी॥
सूरत है अति रंगीली मूरत बड़ी सजीली।
मनमोहनी रसीली चितवन है प्यारी प्यारी॥
सूरज उदय से पहिले गउओं के साथ निकसें।
मथुरेश तोपे वारी तोको चहैं निहारी॥ १॥

यहसुन कर श्री जी कहती हैं

श्री जी वचन-पहिले तुम उनको चित्र बनाय के मोकू दिखाय देउ। फिर मैं दर्शन करूंगी ललिता चित्र बनाकर देती हैं। श्री जी चित्र को देखती २ बेसुध होजाती हैं आँख आजाती है। और स्वप्न में देखती हैं, कि श्याम सुन्दर पीताम्बर ओढ़े भाण्डीरवन में श्री यमुना जी के तट पर नृत्य कर रहे हैं। इस स्वप्न को इस पदमें गाया गया है।

पद नं० २

श्याम सुघर मन मोहन प्यारे, सुन्दर तन पीताम्बर धारे।
शीस मुकुट की अद्भुत शोभा, निरखत ही उपजै मन लोभा॥
कानन कुंडल झलक सुहावन, ललित त्रिभंगी अदा मन भावन।
गल वैजंती माल विराजै, शोभा निरखि काम शत लाजै॥
अधर धरी वंशी अति सोहै, शब्द सुनाय मुनिन मन मोहै।
यमुना तट कानन भांडीरा, नृत्य करत तहाँ सुभग शरीरा॥
असमोहन झांकी जिन पाई, तिन पै मथुरादास बलि जाई।

यह स्वप्न देख कर श्री जी चौंक पड़ती हैं और नृत्य विहारी के विरहमें अति बेचैन होकर "श्याम सुन्दर" "श्याम सुन्दर" रटने लगती हैं। और तीनों लोकों की सम्पदा तिनके के समान समझ कर दर्शनों की अभिलाषा से अपने भवन से बाहर, निकस कर बर्षाने की संकोच गली में पहुंचती हैं। सौभाग्य से श्री महाराज का आगमन भी उसी समय उस ओर से होता है और वह यह पद गाते हुये आरहे हैं।

पद नं० ३

धन श्री राधिका के चरन
परम पावन अतिहि कोमल कमल के से वरन।
पूर नूपुर शब्द कलरव विरह सागर तरन॥
दास परमानन्द अद्भुत श्याम जाकी शरन।

समयानुकूल एक सखी झरोखे से दर्शन कराती है दृष्टि पड़ते ही सुन्दरी राधे मूर्छित होजाती हैं और श्रीकृष्ण जी भी वह अद्भुत ज्योति और शोभा श्री जी के मुखारविंद की निरखि के तुरंत ही मोहित होजाते हैं और ज्यों त्यों अपने स्थान पर पहुंचते हैं

सखियां यह पद इस समय पर गाती हैं।

पद नं० ४

चौ नज़र कैसे युगल पर हैं लुभाते मनको।
त्यागी सुधि तनने ऊधर सुध ने बिसारा तनको॥
रूप माधुर्य युगल छवि पै परस्पर रीझे।
रत्न भान्डार मिला मानो किसी निर्धन को॥
जुट रहे प्रेम अखाड़े में हैं चारों दृगमल्ल।
नभ में एकत्र हुई देववधू दरसन को॥
दोऊ मुख चन्द्र चकोरी हैं परस्पर अखियाँ।
ये दो मुख पद्म हैं सुखदाई अली लोचन को॥
धन्य मथुरेश रसिक रसनिधि धन२ राधे।
धन्य वह जिसने हिये धार लिया इस धनको॥

इसके उपरांत श्री जी की व्याकुलताई विरह में बढ़ती जाती है और सहेलिन के बार २ पूछने और निहोरा, करने से अपनी बेचैनी का हाल यह पद कह कर सुनाती हैं।

पद नं० ५

हाय मनमोहन पिया ने कैसो टोना करि दियो।
प्यारी चितवन मंद मुसिकन मेरो सर्वस हर लियो।
एक पलहू कल नहीं ज्यों मीन जलके बिन दुखी।
चन्द्र बिन जैसे चकोरी लखै धरर धर हियो॥
पीव बिन फीको जगत लागै भवन बन के समान।
डस लियो कारे ने मन बस तन सदन ऊजर कियो॥
पीर घायल की कहा जाने न लागै जाके घाउ।
मर्म जानै सोही जाने प्रेम प्यालो भर पियो॥
चाव के तीखी कटारी प्रेम की जीनो कठिन।
मरमिटे भूलेहु जो पथ प्रेम में पग धरि दियो॥
सांवरे मथुरेश बिन इनहू पै जीवन है वृथा।
प्राण तमसे जाउ युग युगयो पिया मनहर जियो॥

यह पद गातेर श्री जी का गला रुक जाता है और उनसे कुछ बोला नहीं जाता है वह बिलकुल अचेत हो जाती हैं, विरह के आंसुओं की धारा उनके नेत्रों से बहने लगती है सखियां भांतिर के उपाय करके बड़े यतन से उनको चेत कराती हैं और धीरज दिलाती हैं। तब ललिता जी श्री जी की ऐसी हालत देख व्याकुल होकर श्री महाराज की खोज में चल देती हैं यमुना जी के किनारे कदम के, नीचे माधुरी बेला कुंज में उनको बांसुरी बजातेहुये मिलते हैं। ललिता विनती करके सब हाल श्री जी के विरह का कह सुनाती हैं और प्रार्थना करती हैं॥ ललिता वचनः-हे दुख नाशन! प्राण त्यागन के तुल्य राधिका जी को कष्ट होय रहा है जल्दी दर्शन दीजिये और प्राण बचाय लीजिये विलम्ब न कीजिये तब श्री ठाकुर जी कहते हैं:-हे ललिते! मो में और श्री जी में तो नैकहू अन्तर नांय है जो बुद्धिहीन भेद मानत हैं वे मुक्ति के अधिकारी नांहि होवै हैं। (अपूर्ण)

ब्रह्मस्वरूप

(ले० श्री बहिन जयदेवी)

एक अवधूत ने एक मुमुक्षु को बहुत प्रकारसे यानी विधि निषेध दोनों प्रकार के विशेषणों से ब्रह्म का स्वरूप समझाया परन्तु मुमुक्षु की समझ में न आया तब अवधूत दांत कचकचा कर उठा और उस ने मुमुक्षु का हाथ पकड़ कर दांतों से भभोड़ खाया।

मुमुक्षु चीख मारकर चिल्लाने लगा, तब अवधूत हाथ छोड़कर बोला।

अवधूत -अरे भाई! तू कैसी मोटी समझ का आदमी है? इतना समझाने पर भी ब्रह्म का स्वरूप तेरी सहझ में न आया! चिल्लाता क्यों है? हाथ क्यों मलरहा है?

मुमुक्षु – महाराज! आपने मेरा हाथ क्यों झंझोड़ खाया? चिल्लाऊं नहीं तो क्या करूं कष्ट भी मालूम होता है या नहीं? कष्ट में चिल्लाऊं नहीं तो क्या हंसूं? आप ही बताइये!

अवधूत-हां ठीक है! यह मालूम होना यानी ज्ञान ही ब्रह्म है, और क्या चाहता है?

मुमुक्षु-महाराज! यदि ज्ञान ब्रह्म है तबतो नाशवान् हुआ क्यों कि दुःख का ज्ञान अब नहीं है, वह तो चलागया यानी नष्ट होगया, यदि नष्ट न हुआ होता तो अबभी होता!

अवधूत-(मुसकराकर) कैसा अनसमझ आदमी है! अरे मूर्ख! ज्ञान नष्ट हो गया कि दुःख नष्ट होगया? दुःख नष्ट होगया? दुःख क्षणिक था, उसका नाश तो होगया, ज्ञान का नाश नहीं हुआ! ज्ञान नित्य है, ज्ञान रूप समुद्र में से सुख दुःख सर्दी गर्मी, स्वप्न, जाग्रत ये सब उठ २ कर नष्ट होजाते हैं, ज्ञान ज्यों का त्यों रहता है! पूर्व में तू दूध पीता हुआ बच्चा था, फिर कुमार हुआ, फिर युवा हुआ, फिर अधेड़ हुआ, अब बूढ़ा है, ये शरीर की अवस्थायें बदलती रहती हैं यानी नाश होती रहती हैं किंतु इन अवस्थाओं का जानने वाला तू वैसे का वैसाही है, तेरा नाश नहीं हुआ! इसी प्रकार युगों से, कल्पों से तू ज्ञान स्वरूप आत्मा ब्रह्म विद्यमान है और सर्वदा रहेगा! आत्मा का नाश नहीं होता! नाम रूप का नाश होता है क्योंकि स्वप्न के चित्रों के समान नाम रूप अध्यस्त यानी मिथ्या है इन नाम रूपके देखने वाले जानने वाले ज्ञानका कभी नाश नहीं होता! वह ज्ञान ही ब्रह्म है।

भाई-अथवा यों समझ, बाजार में अंधेरा है, मात्र एक दुकान पर दीपक जल रहा है, बग्गी, घोड़े, आदमी, जानवर जो२ दीपक के सामने आते हैं, सब पर दीपक का प्रकाश पड़ता है और उस प्रकाश से प्रकाशित हो जाते हैं। जब वे दुकान के सामने से इधर या उधर चले जाते हैं तो अंधेरे में छुप जाते हैं। अब अंधेरे में कोई कहे कि प्रकाश का नाश हो गया तो वह कहने वाला झूठा है, क्यों कि प्रकाश तो ज्यों का त्यों स्थिर है वह कहने वाला ही प्रकाश में नहीं है, इस लिये कहता है कि प्रकाश नहीं है, इसी प्रकार यह समस्त संसार तो अंधेरा है, प्रकाश रूप ज्ञान ब्रह्म है, संसार की जो २ वस्तु जैसे कि सुख दुःख, स्वप्न, जाग्रत, सुषुप्ति, समाधि, जो२ वस्तु ब्रह्म रूप ज्ञान में आती हैं उस का प्रकाश हो जाता है और जब वह वस्तु प्रकाश से हटजाती है, तो अंधेरे अज्ञानमें लय होजाती है, इससे सिद्ध हुआ कि सांसारिक मायिक वस्तुओं का नाश होता है, प्रकाश रूप ज्ञान का नाश नहीं होता, इस प्रकाश को वेदवेत्ता ज्योति, चित् अथवा ब्रह्म कहते हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे, 'बिजली' अग्नि वास्तविक प्रकाश नहीं है किंतु ज्ञान ही वास्तविक प्रकाश है, इस ज्ञान रूप प्रकाश का बृहदारण्यक उपनिषद् में बड़ी सरल और शोभन रीति से वर्णन किया है। इसी को कहता हूं, सुन!

एक बार याज्ञवल्क्य ऋषि राजा जनक के पास गये। पूर्व में राजा को वरदान दे चुके थे कि

चाहे जो पृश्न पूछ लिया करो, इस लिये राजा इन के आने से बहुत पूसन्न हुआ और दोनों में ये प्रश्नोत्तर होने लगे :-

जनक- हे भगवन्! इस पुरुष की यानी आदमी की ज्योति कौन है ?

ऋषि-हे राजन्! इस पुरुष की ज्योति सूर्य है क्यों कि सूर्य रूप ज्योति से यह पुरुष बैठता है चलता है, काम करने को जाता है और काम कर के फिर लौट आता है।

जनक-हे ऋषि ! सत्य है! किंतु जब सूर्य अस्त हो जाता है, तब इस पुरुष की ज्योति कौन है ?

ऋषि-हे राजन्! जब सूर्य अस्त हो जाता है, तब चन्द्र ज्योति है, इस चन्द्र रूप ज्योति से पुरुष बैठता है चलता है काम करने को जाता है और काम करके लौट आता है।

जनक-हे ऋषि ! सत्य है, परंतु जब सूर्य अस्त होजाता है और चन्द्र भी छुप जाता है उस समय इस पुरुष की कौन ज्योति है ?

ऋषि-हे राजन्! जब सूर्य और चन्द्र दोनों छुप जाते हैं, तब इस पुरुष की ज्योति अग्नि है, क्योंकि अग्निरूप ज्योति से पुरुष बैठता है, चलता है, काम करने को जाता है और काम करके लौट आता है।

जनक-हे ऋषि! सत्य है, परंतु जब सूर्य अस्त हो जाता है, चन्द्र छुप जाता है और अग्नि बुझ जाता है, उस समय इस पुरुषकी ज्योति कौनहै?

ऋषि-हे जनक ! उस समय इस पुरुष की वाणी ज्योति है क्योंकि वाणी रूप ज्योति से पुरुष बैठता है, चलता है, काम करने को जाता है और काम करके लौट आता है, भाव यह है जहां अंधेरे में हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता, वहां आवाज आवे तो आवाज के सहारे से पुरुष पहुंच जाता है।

जनक- हे ऋषि ! सत्य है, परंतु जब सूर्य अस्त हो जाता है, चन्द्र छुप जाता है, अग्नि बुझ जाता है और वाणी शांत हो जाती है, उस समय इस पुरुष की ज्योति कौन है ?

ऋषि-हे राजन्! जहां सूर्य, चन्द्र, अग्नि और वाणी में से कोई नहीं होता, वहां इस पुरुष की ज्योति आत्मा ही है।

हे भावुक ! इस संवाद में प्रथम प्रसिद्ध प्रकाशों को बताया है, जिनके द्वारा पुरुष काम करता है, फिर धीरे २ क्रम से यह समझाया है कि प्रसिद्ध प्रकाश वास्तविक प्रकाश नहीं है किंतु अंधेरा है, वास्तविक प्रकाश तो ज्ञान स्वरूप आत्मा है। यह आत्मा रूप ज्योति ही स्वप्न और सुषुप्ति में शेष रहती है, शेष सब ज्योतियां स्वप्न और सुषुप्ति आदि में शांत हो जाती हैं। यह शुद्ध ज्ञान ही ब्रह्म है।

मुमुक्षु-महाराज ! मैं समझ गया, शुद्ध ज्ञान को ब्रह्म कहते हैं।

अवधूत-हां ! शुद्ध ज्ञान का नाम ही ब्रह्म है, अब मेरा, तेरा और समस्त ब्रह्मांड का शुद्ध ज्ञान लिया जाय, तो एक ज्ञान से दूसरे ज्ञान में क्या भेद होगा ! कुछ भी नहीं क्योंकि भेद डालने वाली कोई वस्तु है ही नहीं। जो ज्ञान स्वरूप पुरुष अनन्त मानते हैं, उनकी भूल है क्योंकि ज्ञान तो एक रस है, न उसमें गुण हैं, न रूप है, न रंग है। इसी कारण से वेदवेत्ताओं ने जीव और ब्रह्म को एक माना है, क्योंकि जैसा मैंने अभी कहा है, उन दोनों में भेद डालने वाली कोई वस्तु है ही नहीं, तो भेद कहां से

हो ? यदि कोई कहे कि भेद डालने वाली प्रकृति यानी माया है, सर्वज्ञता और अल्पज्ञता भी भेद दिखलाती हैं तो यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि ये भेद उपाधियों के हैं, ज्ञान स्वरूप से दोनों एक हैं। दृष्टांत रूप से आकाश एक है, आकाश में कोई भेद नहीं है। घड़े में जो परिच्छिन्न आकाश है, क्या वह महाकाश से भिन्न है ? कभी नहीं क्योंकि घड़े का आकार उपाधि से है। यदि घड़े को फोड़ डालें यानी उसका आकार निकाल दें तो वह ही एकका एक आकाश है। फिर वास्तविक भेद कहां है ?

मुमुक्षु-महाराज ! आप सत्य कहते हैं परन्तु वेदान्तिक तो ब्रह्म के सत्, चित् और आनन्द तीन गुण बताते हैं, और आपने अभी तक मात्र चित् यानी ज्ञान एक गुण वर्णन किया है।

अवधूत-(जोर से ठट्ठा मार कर) अरे ! तू तो महामूर्ख है ? भाई ब्रह्म कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसमें सत् चित् और आनन्द तीन गुण नहीं हों ! जैसे घड़े में पानी भरा हो या कपड़े में रंग हो, इस प्रकार सत् चित् और आनन्द ब्रह्म के गुण नहीं है किंतु ये तीनों ब्रह्म का स्वरूप ही हैं। जो चित् है, वह ही सत् है, वह ही आनन्द है, सत् चित् और आनन्द तीनों एक ही हैं। चित् तो तू समझ ही गया ! अब देख, चित् में जो आकृतियां प्रकट होंगी, वह स्वप्न के समान मिथ्या यानी असत् होंगी या नहीं ?

मुमुक्षु-अवश्य असत् होंगी, चित् ही सत् रहेगा !

अवधूत-बस, इसी दृष्टि से चित् को सत् कहा है, इसलिये सत् और चित् एक ही हुये। अब आनन्द को ले, जितनी दुःख की आकृतियां ज्ञान समुद्र में प्रकट होंगी, वे मात्र झूठी होंगी या नहीं।

मुमुक्षु-जी हां ! अवश्य झूठी होंगी !

अवधूत-तब, दुःख का अभाव कहां रहा ? उसी ज्ञान समुद्र में तो रहा, इसलिये ज्ञान सुख रूप हुआ क्योंकि सुख दुःख योगि प्रतियोगि हैं, एक साथ नहीं रह सके। यह तो दुःख के अभाव की दृष्टि से ज्ञान को सुख रूप कहा है परंतु सत्य तो यह है, कि सत् चित् रूप आत्मा स्वरूप से आनन्द रूप ही है, दुःख का उसमें नाम तक नहीं है। दुःख मन का फैलावा है, जितने जंजाल किसी ने अपने साथ अधिक लगा रक्खे हैं, उतना ही वह दुखी रहता है, क्योंकि मन के फैलावे में आत्मा का आनन्द छुपता चला जाता है। मन को समेट लिया जाय तो आनन्द ही आनन्द है। जैसे कोई दीपक के प्रकाश में काली चादर मुख पर लपेट कर बैठ जाय, तो जितना २ चादर को फैलाता जायगा, उतना २ दीपक का प्रकाश छुपता जायगा और जितना २ चादर को समेटता जायगा, उतना २ प्रकाश भी खुलता जायगा।

हे भावुक ! सुख कहीं बाहर नहीं है, समस्त सुख अपने भीतर हैं ! सुख बाहर होता तो वर्षों बाद किसी प्यारे से मिलने से जो सुख होता है, वह हमेशा रहना चाहिये था, क्योंकि सुख का विषय वह प्यार विद्यमान है, परन्तु वह ही प्यार जब दो चार दिन में नये का पुराना हो जाता है, तो उससे मिलने से आनन्द प्राप्त नहीं होता। इसका कारण यह है कि बहुत काल पीछे जब प्यारे से मिलना होता है, तो उसकी तरफ पूरा २ ध्यान जाता है, पूरा ध्यान जाने से एकाग्रता होती है, या यों कहना

चाहिये कि मनका फैलाव सिमटता है, इसलिये आत्मा का आनन्द प्रकट होता है और उस आदमी को सुख की प्रतीति होती है। जब कुछ काल तक वह प्यारा पास रहता है, तो उसके देखने से एकाग्रता नहीं होती, क्योंकि उसका मिलना साधारण हो जाता है, इसलिये मन सिमटने से जो आत्मानन्द का भाव होता था, वह अब नहीं होता ! बाल, अब तो समझ गया कि सत् चित् आनन्द आत्मा के गुण नहीं हैं किंतु तीन प्रकार की दृष्टि से ब्रह्मवेत्ताओं ने एक वस्तु का स्वरूप समझाया है। फिर ऐसी भूल न कीजो !

एक ज्ञान स्वरूप आत्मा या ब्रह्म ही सत् है जो कुछ है, वह ही है। ज्ञान स्वरूप ब्रह्म में इस विश्व का आविर्भाव इस प्रकार है, जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्न देखता है। स्वप्न की आकृतियां स्वप्नद्रष्टा अधिष्ठान से भिन्न नहीं हैं, प्रत्येक प्रकृति में वह ही भास रहा है, इसके सिवा कुछ नहीं है इस ब्रह्मांड का अधिष्ठान एक ज्ञान स्वरूप ब्रह्म ही है वह ही ब्रह्म तेरा, मेरा और सबका आत्मा है। वह तू ही है, दूसरा नहीं है। जा! जो कुछ मैंने कहा है, उसका निरंतर विचार कर ! ज्यों २ तेरा मन सिमटता जायगा, त्यों २ तुझे आनन्द स्वरूप आत्मा का प्रत्यक्ष होता जायगा, मन फैलने से तुझे संसार सच्चा और आत्मा ब्रह्म मिथ्या के समान भासता है, ज्यों २ मन सिमटेगा संसार मिथ्या और आत्मा सच्चा भासेगा और अंत में एक सच्चिदानन्द ब्रह्म आत्मा ही शेष रहेगा !

मुमुक्षु अवधूत के आदेशानुसार आत्मा का निरंतर अनुसंधान करता रहा और अंत में माया जाल से मुक्त हो ब्रह्म स्वरूप होकर स्वाराज्य निर्वाण को प्राप्त हुआ, इत्यविशोभनम्।

कुण्डली

माया छाया वश भया, सकल विश्व भरमाय।
भव सागर में डूब कें, निश दिन गोते खाय ॥
निश दिन गोते खाय, मरे जन्मे चिल्लावे।
सुख सिन्धु है पास, बिना जाने दुख पावे ॥
'जयदेवा'! भज ब्रह्म, एक अच्युत निर्मोया।
सच्चित् परमानन्द, त्याग सब काया माया ॥

प्रेमा-धार

[ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम]

नाथ तुम हो सुख के आगार।
तुम्हें जन कहते सर्वाधार ॥
तुम्हीं हो निर्बल के बल राम,
तुम्हीं हो करुणा कर सुखधाम।
तुम्हारे सुन्दर चरण ललाम,
भक्त का करते हृदय अकाम ॥
सरसता प्रकटित है कर्तार ॥ १ ॥
निकट श्री यमुना जी के तीर,
सरस जहं बहता त्रिविध समीर।
विशद अति श्यामल सुन्दर नीर,
स्मरण से होता चित्त अधीर ॥
किया था अद्भुत रास विहार ॥ २ ॥
तुम्हारा ललित मनोहर रूप,
निरखि के मोहन श्याम स्वरूप।
मदन शत लज्जित भये विरूप,
सुखद सुषमा कृत सदा अनूप ॥
प्रेम का विग्रह युत अवतार ॥ ३ ॥

जगत् के सकल पदारथ जात,
प्रतीशक तव करुणा विनिपात ।
तुम्हारा दिव्य अलौकिक गात,
अमायक प्रतिभायुत अवदात ॥
तुम्हारी माया अपरम्पार ॥ ४ ॥

हृदय की उत्कल ज्योति निहार,
समर्पण किया विनय का हार ।
सर्व के हो 'प्रभु' तुम दातार,
प्रणय यह करो वेगि स्वीकार ॥
मनोगत ज्ञाता प्रेमा-धार ॥ ५ ॥

संसार में श्री भगवन्नाम ही सार है

[ले० श्री गंगानाथ जी उपाध्याय]

हाय ! अहो आश्चर्य ! मनुष्य शरीर परम दुर्लभ्य है, देवताओं को भी इस शरीर की प्राप्ति कठिन है, ऐसा परम दुर्लभ्य मनुष्य शरीर पाया । उसमें भी पुरुषत्व प्राप्त हुआ और श्रुति स्मृति के ज्ञाता श्रेष्ठ सन्त, महात्मा, भगवद्भक्तों का सदुपदेश भी प्राप्त हुआ ऐसी उत्तम सामग्री प्राप्त करके अपने विचार द्वारा परमात्मा के परम पदका अखण्डानन्द प्राप्त करना योग्य है, मनुष्य ही वस्तु तत्व को प्राप्त कर सकता है, ऐसे अमूल्य ज्ञानमय शरीर को पाकर भी उस अपने प्राप्तव्य वस्तु की प्राप्ति के लिये उपाय न करे, केवल, माता, पिता के मल से उत्पन्न हुये और मल, मांस, त्वचा, रुधिर, नस मेद, हड्डियों से व्याप्त तथा मूत्र और विष्टा से भरे हुये पुतले, कुत्ता और सियारों का आहार अत्यन्त निन्दनीय चाण्डाल की समान स्पर्श के अयोग्य इस शरीर के पालन पोषण रक्षण आदि भोगों में ही अमूल्य नरजन्म को खोना हाय ? इससे अधिक अनर्थ क्या होगा ? अतएव चतुर पुरुष को योग्य है कि यह भोग करने योग्य वस्तुओंसे उतना प्रयोजन रक्खे कि जितने से निर्वाह होजाय विशेष न रक्खे ! । एवं यह दृढ़ निश्चय रक्खे कि विषय सुख मुख्य नहीं है, और यदि प्रयोजन स्वयं सिद्ध होजाता हो तो उस विषय भोगकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न न करे क्योंकि उसमें वृथा परिश्रम है, कर्मोंके अनुकूल संसारिक सुख दुःखतो स्वयं ही प्राप्त होते हैं। केवल ब्रह्मानन्द की प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना ही इस मनुष्य शरीर का परम कर्तव्य है । देखिये यदि पृथ्वी का बिछौना है तो फिर अन्य बिछौने की क्या आवश्यकता है ? स्वतः सिद्ध भुजाओं के तकिये के रहते और तकिये की क्या आवश्यकता है ? अंजलि है तो पानी पीने के लिये पात्र की क्या आवश्यकता है ? यदि कहोंकि यहसो सब है परन्तु अन्न जल और वस्त्र तो विना मांगे नहीं मिल सक्ते उसका उत्तर यह है कि-क्या मार्ग में छिन्न भिन्न वस्त्र या वृक्षों में वल्कल नहीं हैं, क्या वृक्षों में फूल नहीं है ? नदियां भी क्या सूख गई हैं ? क्या रहने के लिये गुफायें नहीं हैं ? क्या वहां शरणागत रक्षक, अधमोद्धारक, पतितपावन, भक्तवत्सल, विश्वके पति भगवान् रक्षक नहीं हैं ? तब फिर परम हंस महात्मा योगीगण वन

मन में मस्त अन्धे लोगोंके द्वार पर जाकर क्यों याचना करें! क्या उनको याचना करने की आवश्यकता है? किन्तु नहीं! अत एव सन्सार की सकल वस्तुओं से वैराग्य करके अपनी शक्ति के अनुसार स्वतःसिद्ध अपने आत्मारूप श्री हरि का भजन, ध्यान, कीर्तन करना योग्य है, तन, मन वचन से नित्य निरन्तर अनन्य भक्ति पूर्वक उन्हीं के परम पावन नामका जप कीर्त्तन करना योग्य है, वही अनन्त ब्रह्मानन्द परम पद है, हम को उचित है कि उसी आत्म स्वरूप में मग्न होकर, उन्मत्त होकर, उन्हीं का भजन करें और उन के नामका कित्तन करें, ऐसा होने से संसार का कारण जो अविद्या 'माया' है उससे भय नहीं रहेगा। जैसे भगवान् ने अपने मुख कमल से स्वयं कहा है, दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योग माया बड़ी दुस्तर है परन्तु जो पुरुष मुझ को ही निरन्तर भजते हैं वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं। ऐसी भगवद्भक्ति को त्याग कर पशु भिन्न ऐसा कौन मनुष्य है जो विषय भोग का आदर करेगा। इस संसार रूप घोर दुःख में कर्म-फल रूप दुःख भोगते हुए प्राणियों को देख कर भी जो सचेत नहीं होता वह अवश्य नर पशु है।

यह सूर्यनारायण उदय और अस्त हो होकर मनुष्यों की आयु को नष्ट करते हैं इस में उतना ही समय सफल है जिसमें हरि भजन किया जाय! जैसे मनुष्य जीते हैं वैसे क्या वृक्ष नहीं जीवित रहते, लुहार की धौंकनी क्या हमारे आप के समान श्वास नहीं लेती, ऐसे ही गांव के पशु कुत्ता, शूकर आदि क्या भोजन, विषय भोग और मल त्याग नहीं करते? यदि मनुष्य में सच्ची भक्ति नहीं है तो पशु में और मनुष्यों में क्या अन्तर है? अर्थात् कुछ अन्तर नहीं है, कुत्ते जिस प्रकार द्वार २ फिर कर गृहपाल द्वारा ताड़ित होते हैं, ग्रामीण शूकरादि जैसे असार विष्टा आदि वस्तु ग्रहण करते हैं, और गधा, ऊंट और बैल जैसे केवल बोझ लादते हैं, वैसे ही हरि भक्ति हीन मनुष्य कुत्ते के समान सर्वत्र तिरस्कार को पाता है यद्यपि वह भक्ति हीननर पशु ऐसे ही समान आचरण वाले के यहां स्वार्थ के कारण कुछ काल के लिये आदर पाता है, यदि लौकिक द्रव्य आदि स्वार्थ वस्तु हो तो, परिणाम में तो दुःख ही पाता रहेगा, नरक आदि दुःख की यातना ही उसके लिये तैयार रहेगा, वह पुरुष शूकर के समान असार विषय (विष्टा) ग्राही है, ऊंट के, गधे के और बैल के समान केवल संसार के भार को लाद कर परम दुःख के कारण क्लेश को प्राप्त होता है। मनुष्य के वे कान सर्प के बिल के समान व्यर्थ हैं जिन में कभी श्रीभगवान् के चरित्रों का गुण-गान और परम पावन श्रीभगवान् के नामों की ध्वनि नहीं गई, वह जिह्वा मेंढक की जिह्वा के सदृश हुआ है जो हरि के गुणगान और परम मधुर हरि के नाम का कीर्त्तन नहीं करती वह शिर अनेक मणि माणिक्य हीरा मोती आदि से युक्त मुकुट पहिने हुये होने पर भी भार रूप ही है जो हरि के मन्दिरों के सामने, विद्वान् ब्राह्मण, साधु, सन्त, महात्माओं के आगे नहीं झुके, वे हाथ मुर्दे के समान हैं जो सोने के कंकण धारण किये हों, और बहुमुल्य हीरा माणिक्य आदि जड़ाऊ अंगूठी पहिने हुवे हो परन्तु कभी हरि की, अपने गुरुकी, हरि भक्त महात्माओं की सेवा या टहल नहीं करते हों? मनुष्यों के वे नेत्र मोर के पर में जैसे केवल देखने के नेत्र के समान बने होते

हैं वैसे ही हैं, जो भगवान् की पवित्र मूर्तियों का दर्शन नहीं करते, और वे पैर ठूंठ के समान व्यर्थ हैं जो भगवान् के मंदिर में या तीर्थ स्थानों में और महात्माओं के आश्रम आदि पवित्र स्थानों में नहीं जाते। वह मनुष्य जीते ही मरे के तुल्य हैं जो भगवान् के चरणों की रेणु को शिर पर नहीं धारण करते या भगवान् के चरणों पर चढी हुई तुलसी के गन्ध को नहीं सूंघते, वह हृदय वज्र का है जो हरि नामों को सुन कर और उसके माहात्म्य और अखण्ड सुख फल की प्राप्ति को सुन कर भी विश्वास नहीं करता, गद्गद न हो और रोमांच न हो आवे एवं नेत्रों में आनन्द के आंसू भर न आवें तो ऐसे मनुष्य का हृदय वज्र से भी कठोर है, यह ठीक ही है! माया से मोहित भगवद्भक्ति से रहित मनुष्य इस अत्यन्त निन्दनीय विकार वाले तुच्छ शरीर के स्वाभाविक दोषों के समूह को बड़े यत्न के साथ ढकता है, और बनावटी अनेकों गुणों को दिखाता हुआ अपनी बड़ी प्रशंसा करता है, और इस प्रशंसा के लिये अनेक प्रयत्न करता है, परन्तु ध्यान रहे कि-उस न्याय कर्ता ईश्वर के यहां इस असत्य प्रशंसा का अवश्य विषम फल मिलेगा। अतः विवेकी विचारवान् मनुष्य को उचित है कि इस अपार संसार रूपी समुद्र में से छुट कर परमानन्द की प्राप्ति के लिये उस विश्वपति जगदाधार परमात्मा के चरण कमल रूपी जहाज का आश्रय लें, और उस परमात्मा के परम पावन नाम का नित्य जप और कीर्त्तन करें। सच्ची भक्ति पूर्वक कुटिलता आदि मलिन वासनाओं को त्याग कर किये हुवे जप ध्यान स्मरण कीर्त्तन ही उस परमात्मा का चरण कमल रूपी जहाज है, इस जहाज पर बैठने से ही वह कराल दुस्तर संसार सागर से सहज ही पार होकर यह आत्मा अविद्या के उपाधि से जो जीव उपनाम को प्राप्त हुआ है सो अपने धाम को पहुंच कर अर्थात् परम आनन्दमय परम पद को प्राप्त होकर अखण्ड आनन्द को अनुभव करेगा, इसके अतिरिक्त जीव का विश्राम स्थान नहीं है। जिस परमेश्वर से इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय होता है, जो परमेश्वर जिस प्रकार घड़े में कारण रूप मृत्तिका व्याप्त हो रही है इसी प्रकार कार्य रूप इस संसार प्रपंच में कारण रूप से व्यापक हो रहा है, तथा जो मिथ्या कार्य से भिन्न है, पृथ्वी जिसके पैर हैं, अन्तरिक्ष नाभि है, सूर्य चन्द्रमा नेत्र हैं, दिशा कर्ण हैं, आकाश शिर है, अग्नि मुख है, समुद्र मूत्राशय है, जिसके अन्दर सारा विश्व स्थित है, सुर, देवता, मनुष्य, पक्षी, सर्प, गन्धर्व, दैत्यों के साथ जो बार२ रमण करता है, पुनः जैसे सूर्य की किरणों से तपी हुई बालु में जल की भ्रान्ति होती है परन्तु वह सत्य नहीं है, तथापि सूर्य की किरणों की सत्ता से सत्य रूप भासती है, स्थिर पानी में जैसे यह कांच है ऐसा भान होता है सो सत्य नहीं है, तथापि पानी की सत्ता से सत्य भासता है, वैसे ही जैसे कांच में पानी की भ्रान्ति होती है, परन्तु वह सत्य नहीं है तिस पर भी कांच की सत्ता से सत्य सा ही भासता है, वैसे ही अधिष्ठान रूप परमात्मा में तमोगुण के कार्य रूप, पंच महाभूतों की सृष्टि, रजोगुण के कार्य रूप इन्द्रियों की सृष्टि और सत्वगुण के कार्य रूप देवताओं की सृष्टि कल्पित एवं असत्य है और जो परमात्मा माया का पति है, जिसकी माया के वश सम्पूर्ण विश्व और ब्रह्मा आदि देवता हैं और जिनके सत्व से यह अनित्य संसार रस्सी में सर्प के भ्रम के समान मिथ्य

प्रतीत होता है, और जिनके केवल चरण ही संसार रूपी समुद्र से पार करने की इच्छा वालों को एक जहाज रूप है, ऐसे सम्पूर्ण कार्य कारणों से परे जो सम्पूर्ण भूतों में सब के आत्म रूप से व्यापक है, और जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण भूत स्थित हैं, जो परमात्मा अन्तर्यामी रूप से चराचर सकल भूतों के हृदय में विराजमान है और उनके शुभ और अशुभ कर्मों का केवल साक्षी है, जो जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्ति में सर्वदा सकल दृश्य को बुद्धि को तथा उसकी वृत्तियों के भाव को और अभाव को जानता है, तीनों अवस्थाओं का साक्षी सत्स्वरूप, पांच कोशों से न्यारा और जिसका मन वाणी से वर्णन नहीं हो सकता, जो अपने आप सबको देखता है, जिसको कोई नहीं देख सकता है, जो स्वयं बुद्धि आदि को चेतना देता है और बुद्धि आदि जिसको चेतना नहीं दे सकते, जो अपने आप सब जगत् में व्याप्त है, जिसको कोई व्याप्त नहीं कर सकता है, जिस के प्रकाश से यह सारा विश्व प्रकाशमान हो रहा है जिनको विश्व प्रकाश नहीं कर सकता, जिसके समीप में रहने से ही शरीर इन्द्रिय मन और बुद्धि मानो प्रेरणा किये के समान अपने २ विषयों में प्रवृत्त होते हैं जैसे सूर्य जगत् को प्रकाश करते हुए जगत् के शुभाशुभ कर्मों को जानता है, वैसे ही जो नित्य बोध स्वरूप आत्मा सकल अहंकार से देह पर्यंत के पदार्थों को तथा सुख आदि विषयों को जानता है, अन्तर्यामी पुराण पुरुष अखण्ड सुख का निधि है मन तथा अहंकार के विकारों को और देह इन्द्रियें प्राण की, की हुई क्रियाओं को जानने वाला, जैसे लोहे के गोले के साथ में अग्नि निर्लेप रहता है, वैसे ही मन आदि के साथ में रहता हुआ भी, मन बुद्धि और अहंकार आदि की क्रिया के विकारों से लिपायमान नहीं होता, ऐसे अपने ही हृदय कमल में विराजमान परमात्मा का गुण गान भजन और परम मंगल, पतितपावन मनोहर नामों का स्मरण और कीर्त्तन ही एक मात्र मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। वास्तव में जो श्रेष्ठ पुरुष विवेक विचार के द्वारा संसार के स्वार्थियों के स्वार्थ जाल को तोड़ कर अपने परम कल्याण के मार्ग में चलता है शास्त्र में उस भाग्यवान् पुरुष को ही उत्तम कहा है। मनु आदि धर्म शास्त्रों में लिखा है कि पुरुष देव ऋण ऋषि ऋण, और पितृ ऋण इन तीन ऋणों से बंधा हुआ उत्पन्न होता है। तदनन्तर यज्ञ होम पूजा आदि करके देव ऋण से, वेद पठन पाठन आदि करके ऋषि ऋण से और सन्तान उत्पन्न करके पितृ ऋण से छूटता है, ऐसे यज्ञ होमादि, वेदाध्ययन और सन्तान उत्पन्न करके देवता, ऋषि और पितरों के ऋण बन्धन से छूटने वाले तो संसार में करोड़ों मनुष्य हुआ करते हैं परन्तु परमात्मा के साक्षात्कार के द्वारा संसार बंधन से एक साथ छूट जाने वाला महात्मा पुरुष तो कदाचित् कोई बिरला ही देखने में आता है। हम लोगों पुत्र, मित्र, स्त्री आदि के साथ रहने से होने वाला सुख तो हर एक जन्म जन्मान्तर में भोग आये हैं, अब यह परम दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है इस पर भी पुरुषत्व होना और सत् असत का विवेक ये तीनों बात मिलना परम दुर्लभ है, इसलिये परम दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर उसमें भी पुरुषत्व को तथा नित्यानित्य पदार्थों के विवेक को पाकर भी जीव यदि संसार के विषय भोग में कूकर, शूकर और गधे आदि पशु के समान खाना पीना विषय

भोग करना और भार लादना आदि में ही फंसा हुआ पड़ा रहे तो उस नष्ट बुद्धि वाले पुरुष का जन्म लेना ही निरर्थक है। अतएव सत् पुरुष को चाहिये कि सन्त समागम द्वारा अथवा सत् शास्त्रों को बारम्बर विचार पूर्वक अवलोकन करके सार असार वस्तु का निश्चय और अपने आत्मा का संत समागम द्वारा उद्धार करे। नित्य आत्मा रूप से रहने वाले अपने ही हृदय कमल में साक्षी रूप से स्थित परमात्मा के पतित पावन नाम का जप और कीर्त्तन करे, यह ही एक मात्र मनुष्यों के लिये सहज उपाय है। संसार और संसार के सकल पदार्थ उत्पत्ति नाश वाले क्लेश वर्धक असार हैं अर्थात् संसारी वस्तुओं में लेश मात्र भी सार नहीं है। श्रीभगवान् और श्रीभगवान् का परम पावन नाम ही सार है, अविनाशी है, अचल है, जो पुरुष संसार के सकल नीरस जड़ पदार्थों की दुराशा को त्याग कर और पाखण्ड, ढोंग, छल, कपट आदि पाप कर्मों को त्याग कर, आदर, सत्कार और अपने मान प्रतिष्ठा आदि श्रेष्ठत्व की लेश मात्र भी आकांक्षा नहीं करते हुये, केवल परमात्मा के लिये सब कुछ परमात्मा का समझता हुआ परमात्मा के निमित्त शुभ आचरण आदि निष्काम कर्म अर्थात् परमात्मा समर्पित कर्मों को करता है और परमात्मा का परायण है, अर्थात् परमात्मा को परम आश्रय और परमगति मान कर परमात्मा की प्राप्ति के लिये तत्पर है, तथा परमात्मा का भक्त है, अर्थात् परमात्मा का परम पावन नाम गुण प्रभाव और रहस्य के श्रवण, कीर्त्तन, मनन, ध्यान, पठन पाठन का प्रेम सहित निरन्तर अभ्यास करने वाला है और आसक्ति रहित है, अर्थात् स्त्री पुत्र और धनादि सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों में स्नेह रहित है, और सम्पूर्ण भूत प्राणियों में वैर भाव से रहित है, अर्थात् सर्वत्र परमात्मा ही परिपूर्ण है ऐसी ज्ञान दृष्टि से प्रेम करता है, अपने पञ्चभौतिक शरीर की मोह ममता से रहित है, वह अनन्य भक्ति वाला पुरुष ही उस परम पुरुष परमात्मा को प्राप्त होता है, संसार में वह पुरुष धन्य है! जो चराचर ब्रह्माण्ड के कारण रूप पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के शरणागत होकर कायिक, वाचक, मानसिक सर्व प्रकार से उस अखिलेश्वर परमात्मा का परम पावन नाम का जप, ध्यान, स्मरण कीर्तन करता है वह ही जगत् में परमोत्तम श्रेष्ठ पुरुष है। आहा! उस पुरुष ने त्रैलोक्य को पावन कर दिया उसके कुल श्रेष्ठ है, उसके माता पिता धन्य हैं! परम भाग्यवान् हैं, वह ही इस लोक और परलोक में सर्वत्र पूज्य है, उसके लिये त्रैलोक्य भर में किसी वस्तु का अभाव नहीं रहेगा। वह पुरुष जीवन मुक्त है, सदा आनन्द में मग्न रहता है, उसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, विष भी अमृत हो जाता है। क्योंकि उसकी दृष्टि में सब वासुदेव ही देखने में आता है, शारीरिक, मानसिक, दैविक, शत्रु संभूत वा शीत, उष्ण वात आदि से उत्पन्न अनेक प्रकार के क्लेश हरि चरण शरणागत परम सौभाग्यवान् मनुष्य को दुःखित नहीं कर सक्ते। इसलिये सकल पाठक गणों से सविनय प्रार्थना है कि संसार की सकल वस्तुओं से चित्त वृत्ति को हटा कर, जहां तक बन सके बाह्य कार्यों से भी उपराम होकर अपने आपके कल्याणार्थ अन्तःकरण के द्वारा प्रेम भक्ति पूर्वक श्रीभगवन्नाम में दृढ निश्चय करके नित्य उस परम मधुर पावन नामों का जप कीर्त्तन स्मरण ध्यान करे। सकल शास्त्र के और सन्त महात्माओं के परम सार सिद्धान्त इस कराल दुःखागार त्रिविध तापों से परिपूर्ण संसार सागर से मुक्त होने के लिये एक मात्र आधार और उपाय श्रीभगवन्नाम ही सर्वश्रेष्ठ है, सहज है, सर्वोत्तम है।

भजन

उड़ो उड़ता पछी यार तेरा कौन करे इतबार ॥टेक॥
नौ खिड़की का बना पींजरा तेरे खुले पड़े सब द्वार।
आना २ मुश्किल तेरा जाना सहज सम्हार ॥ १ ॥
तेरे कारण महल बनवाये संचे सुत धन यार।
सब को छोड़ जात इक पलमें निर्मोही निरधार ॥ २ ॥
सुन्दर भोजन नित्य खिलाऊं पहराऊं श्रृंगार।
मल २ इत्तर फुलेल लगाऊं नहीं माने उपकार ॥ ३ ॥
कोट बनाऊं किला बनाऊं बांधूं बंध हजार।
रोका रहे ना निकर जायगा घोड़े का असवार ॥४॥
सकल अर्थ का यही अर्थ है सकल बात की बात।
दरिया सुमरण राम नाम का कर लीजे दिन रात ॥५॥

२

अब मैं दोनों कुल उजियारी ॥ टेक ॥
पांच तो पुत्र उदर में खाये नणद खाय गये चारी।
पार परोसिन सोती खाई तापर बूढ़ी महतारी ॥ १ ॥
सोलह खसम नैहर में खाये और बत्तीस ससुरारी।
धन्य सराहु वाही के रस को सरभर करत हमारी ॥२
कहै कबीर सुनो भाई साधो सन्तन लेहु विचारी।
या पद को जो अर्थ लगावे वही पुरुष मैं नारी ॥ ३ ॥

३

हंसा सत्गुर शब्द सहाई ॥ टेक ॥
निकट गये तन रोग न व्यापे, पाप ताप मिट जाई।
पठवन पठवन दीठ न लागे, उलट ताही घर खाई ॥१॥
मारन मोहन उच्चाटन वशी, करन मनहिं पछताई।
जादू मंत्र युक्ति नहिं लागे, शब्द के बाण बहाई ॥२॥
टोना डाइन दग से डर पै, जहर जूड़ हो जाई।
विषधर मन में कर पछतावा, बहुरि निकट नहिं आई
जहां तक कालिका काली के गुण संत चरण लौ आई
कहै कबीर काटी यम फन्दा सुकृत लाख दुहाई ॥४॥

४

ऊधो हम बैरागन हरि की ॥ टेक ॥
ऊधो जी तुम जाय द्वारिका,
व्यथा कहो सखियन की,
जैसे जल बिन मीन ज्यों तरफै,
सो गति भई गोपियन की ॥१॥
भूषण वसन सभी हम त्यागे,
अंग विभूति रमाई,
यह ब्रजवासी कहत बावरी,
हम भूखी दरशन की ॥२॥
पात २ वृन्दावन ढूंढी,
सुध छांडी उस घर की,
आप जाय कुब्जा संग विरमे,
हम करी दूर २ की ॥ ३ ॥
स्वप्ने आय दरश हमें दीजे,
मिटे पीर विरहिन की,
केवल कुटिल कहै कर जोरी,
हम दासी चरणन की ॥ ४ ॥

५

मंगलमूर्ति नाथ तुम्हारी कबहमको दिखलाओगे ॥ टेक
विरह ज्वाला से हृदय तपत है कबशान्ति बूंद बरसाओगे
अबतो और रहा नहीं चारा ढूंढ फिरामैं सब संसारा
बिन तेरे नहीं कोई हमारा कब यह तृष्णा मिटाओगे ॥१
अबतो प्रभुजी दर्शन पाऊं तेरा ही निशिदिन ध्यान लगाऊं
और न कोई वस्तु चाहूं अब विश्वासी बनाओगे ॥
केशव नंदने शंख बजाया नव विधान की महिमा सुनाया
किसविध उसने पद यह पाया कब विद्या वेगि सिखाओगे
अब हृदय को ऐसा बनाओ विश्वासी में भेदन लाओ
ऐसी कृपा हमपर लाओ यह दास चरणों में बिठाओगे

'भक्ति' का 'गो अङ्क'

आगामी विजयादशमी पर "भक्ति" का विशेषांक 'गोअंक' के नाम से प्रकाशित होगा। इस अंक में भिन्न २ देशों के गोवंश का इतिहास, गोवंश की रक्षा व उन्नति के उपाय, धार्मिक, समाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से भारत में गोवंश की रक्षा की आवश्यकता, गोशालाओं की दशा और उनकी उन्नति के साधन, उत्तम डेयरी फार्मों का ब्योरा, उत्तम गौ और सांडों के चित्र, वैज्ञानिक अनुसन्धान के असनार चारे की उपयोगिता, उत्तम चारा उत्पन्न करने के उपाय, गौ का महत्व इत्यादि गो सम्बन्धी सब प्रकार का ज्ञान अनुभवी विद्वानों और प्रमाणिक ग्रन्थों द्वारा संग्रह करके सम्पादन किया जावेगा। यह अंक न केवल साहित्य की दृष्टि से अद्वितीय होगा वरन संसार के सब मनुष्यों के अत्यन्त हित की वस्तु होगी। लेखक महानुभावों से प्रार्थना है कि इस लोक हितकार्य में हमारा हाथ बटावें। ऐसे सज्जनों की सम्मति की अत्यन्त आवश्यकता है जो हमको यह सूचना दें कि इसके लिये आवश्यक सामग्री कहां से प्राप्त हो सकती है? जिन सज्जनों के पास इस सम्बन्ध की सामग्री तथा चित्रादि हों वह भक्ति कार्यालय रेवाड़ी में भेजने की कृपा करें। काम निकलने पर उनके चित्रादि उनको वापिस भेज दिये जायंगे। जो सज्जन चित्रादि का मूल्य चाहें वह भी हम से पत्र व्यवहार करें।

भवदीय

सम्पादक "भक्ति" रेवाड़ी।

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	११६)
लेफ्टिनेन्ट सरदार खुशालसिंह जी सांधावालिया राजा सांसी अमृतसर	१११)
पं० जैनारायण जी भोड़ाकलां, गुड़गावां	११०)
धर्म सींह मावजी जेठवा कालरीप्रोप्राइटर झरिया	१०१)
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी ।	१०१)
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मनिस्टर आफ ऐग्रीकलचर लाहौर	"
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	"
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी श्रो, बी, ई, रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
ला० जौहरी मलजी रेवाड़ी	५१)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मुन्शी चण्डूमल बलिराम जी भटिण्डा	५१)
सर आपा राव सातोले साहिब सी एस. ई. के. बी. ई. रेवेन्यू मेम्बर गवालियर	५१)
प्रो० बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली	४२)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
बाई लक्ष्मीदेवी भगनी राव जगमालसिंहजी, रईस नांगल	"
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	"
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया दिल्ली	"
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	"
लाला दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	"
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	"
श्री भक्काणीदेवी धर्मपत्नी लाला नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	"
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी लाला प्रभुदयाल जी "	"
श्रीमती गणपतिदेवी धर्मपत्नी लाला गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज	"
राव गजराजसिंह जी बी, ए, एल, एल, बी; गुड़गावां	"
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद	"
प्रेमसुख हीरालाल जनरल ठेकेदार रेवाड़ी	"
ऐस, जे, राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट,	"
राय बहादुर सरदार बसाखाशिंह जी नई दिल्ली	"
पी. एन, कौल बैरिस्टर दवान भूतपूर्व दिवास स्टेट लाहौर	"
चौधरी जीवनदास जी आनरेरी मजिस्ट्रेट झंग	"
लाला कृष्णलाल जी जींद	२५)
लाला भागारथमल कटरा लच्छूसिंह देहली	२१)

सहायक

पि. टी. शाह जयपुर	१३)	सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी	५)
जमादार उमरावसिं : भाड़ावास	११)	जमादार दीपचनद जी	५)
राव साहब चौधरी हेतराम जी दौलतपुर	११)	लाला ओंकारमल जी कानपुर	५)
चौधरी हुकमासह जी निखरी	११)	चौधरी दौलतराम जी पटवारी नाहरी	५)
पण्डित जगन्नाथ जी रेवाड़ी	११)	लाला हरिश्चन्द्र जी प्रेमहाउस, दिल्ली	,,
लाला अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी	११)	बाबू रामस्वरूप गनेश मॉल	,, ५)
चौधरी गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा	११)	पण्डित मथुराप्रसाद जी जमालपुर	,,
चौधरी मनेहरसिंह जी ,, पालहावास,	,,	लाला न्यादरमल जी दिल्ली	,,
लाला छोटेलाल घासीराम जी दिल्ली	,,	लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,,	,,
लाला सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली	,,	लाला प्रभुदयाल जी फरुखनगर	,,
चौधरी इन्द्रसिंह जी सिरहोल	१०)	त्रिवेणी देवी धर्मपत्नी लाला रामकरणदास खरक	,,
बाबू शिवरामसिंह जी गर्दावोलनी	७)	लाला श्रीराम जी गुप्ता भटिण्डा	,,
माई गुलाबो देवी दिल्ली	५)	बाबू जयदयाल भार्गव भाड़ाकलां	,,
लाला बनारसीदास दिल्ली	५)	रा०सा० ला० सेवकराम एम, एल, सी- लाहौर	,,
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी	५)	पं, नानकचन्द एम, एल. सी लाहौर	,,
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौधरी जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़ ।	५)	श्रीमान् धानी चन्द लाहौर	५)
श्रीमान् पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)	श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी	५)
रा० ब० लेखनारायण सिंह जी बाढ़, पटना	५)	श्रीमती दुर्गीदेवी भिवानी	५)
रा०सा० बाकेबिहारीलालजी तहसीलदार चिडावा	५)	डाक्टर कुन्तलकुमारी दिल्ली	५)
बा० बैजनाथसिंह बनेंगयोंग, बर्मा	५)	हवलदार ठाकरसिंह मूसपुर	५)
ठाकुर भूरसिंह खण्डेला, जयपुर	,,	सूरजमल सुरोलिया खेतड़ी	५)
बड़िया बाबा, मन्दिर श्री दादी जी खेतड़ी	,,	भूरसिंह माजरा, अलवर	,,
		मोहकमसिंह बापणकी	,,

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके रक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		३५९
२. भगवद्भक्ति [	ले० श्री० भोले बाबाजी	३६०
३. रिपु करे मिताई (	कविता) [श्रीरामेश्वर प्रसाद जी बाजोरिया	३६६
४. वैराग्य और अभ्यास [	ले० बा० राधेश्यामजी बी० ए० एल० एल० बी०	३६७
५. दो अक्षर [	ले० श्रीदुर्गा प्रसादजी गुप्ता	३७०
६. भ्रम [	ले० श्री मदनगोपाल जी "सिंहल"	३७१
७. गोसाईं जी की प्राकृतिक उपमाएं [	ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी० ए०	३७२
८. अधिक अब सहिनजात रघुबीर [	ले० श्री रमाशंकर जी मिश्र "श्रीपति"	३७४
९. दुःख का वाटर प्रूफ़ [	ले० श्री वैद्य अमृतलाल सुन्दर जी	३७५
१०. सावधान		३७५
११. चौथि भक्ति मम गुणगण करहि कपट तज गान [	ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी	३७७
१२. गोपदेवी लीला [	ले० श्री राघवेन्द्रराव देवीसहाय जी	३८०
१३. ब्रह्मस्वरूप [	ले० बहिन जयदेवी	३८१
१४. प्रेमा-धार (	कविता) [ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम	३८५
१५. संसार में श्रीभगवन्नाम ही सार है [	ले० श्री गंगानाथ जी उपाध्याय	३८६
१६. भजन		३९१
१७. भक्ति का गो अंक		३९२

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	वेदोपनिषत्	,,	।=)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥।
६	ज्ञान भक्ति योग संग्रह	,,	=)॥।
७.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	-।)
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१०.	सारसंग्रह	,,	=)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	॥)
१२.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१३.	भगवदंक	,,	॥।)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालोंको डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।